सफल जीवन

अर्थात्

शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और धार्मिक
उन्नति के साधनों का वर्णन।

लेखक

राजाराम प्रोफेसर डी. ए. वी.

कालिज लाहौर

बाम्बे यन्त्रालय लाहौर में छपा

पौष १९७३ विक्रम | दिसम्बर १९१६

प्रथमवार १००० | मूल्य ॥)

सफलजीवन
का
विषय सूची

विषय	पृष्ठ
भूमिका	१
श्रेयोमार्ग	६
सफलजीवन किसे कहते हैं	७
दृढ संकल्प	९
काम करने की प्रकृति	११
आरोग्य,बल और दीर्घ आयु	१६
शुद्ध वायु	१७
पानी	१८
प्रकाश	२०
आहार	२०
वस्त्र	२४
व्यायाम	२५
साधारण नियम	२६
बुद्धि शक्ति	२७
चरित्र	३३
सत्यप्रियता	३६
भाषण के अन्य नियम	४३
शिष्टाचार	४८
सभ्यता	५१
धैर्य और विवेक बुद्धि	५४
सांसारिक ज्ञान	६२
आत्म विश्वास	६४
आत्मसम्मान और आत्मोद्धार	६६
कमाई	७१
धन का उपयोग	८४
उधार और ऋण	८९
घर के लोगों का परस्पर बर्ताव	११२
परोपकार	१२०
सामाजिक उन्नति वा देश सेवा	१२३
आदर्श जीवन	१३४
ईश्वरभक्ति	१३६

भूमिका ।

"मनुष्य की प्रकृति किस तरह बनती है"

इस में मेरा स्वानुभव ।

मुझे अपने बाल्यकाल की वह बात स्मरण है, जब मेरे पूज्यपिताजी मुझे प्रभात के समय जगाते थे, और अपने साथ बाहर स्नान करने ले जाते थे। नित्य नियम में उनकी पूर्ण निष्ठा थी, वे अपने पूजा-पाठ में कभी नागा वा आलस्य नहीं करते थे, और पूजा पाठ को विना शौच स्नान किये करते न थे, इस लिए सवेरे उठना, बाहर शौच जाना, दातून करना और स्नान करना आदि नियमों के पक्के थे। और चाहते थे, कि मैं भी इन नियमों का पालन करूं, इसलिये वे मुझे जगा लिया करते थे, और यह देख कर बड़े प्रसन्न होते थे, कि मैं उनकी आज्ञानुसार इन नित्य नियमों का बराबर पालन करता हूं। इस तरह मुझे बचपन में सवेरे उठने, बाहर शौच जाने नित्य दातून स्नान करने का स्वभाव पड़ गया। इसके साथ ही एक और स्वभाव, जो मैंने अपने पूज्य

पिता जी से ग्रहण किया, वह अपने काम में उद्योग और परिश्रम करना है। ये साधारण से और बहुत थोड़े नियम जो बचपन में मेरा स्वभाव बन गए, आज मैं अपने अनुभव से कहता हूं, कि इनसे मुझे बहुत बड़ा लाभ पहुंचा है। इन नियमों ने मुझे नीरोग रखने में और अपना काम करने में सदा सहायता दी है। मुझे गुरुमुखात् पढ़ने का अवसर बहुत ही थोड़ा मिला, केवल छः ही वर्ष मैंने संस्कृत पढ़ी है, तथापि उद्योग और परिश्रम के स्वभाव ने अन्ततः मुझे उन ग्रन्थों के पढ़ने का भी अवसर देही दिया, जिनको मैं विद्यालय छोड़ते समय एक मिडल के विद्यार्थी के लिये एम० ए० का कोर्स समझता था। मैं ने जब आर्षग्रन्थावलि को निकालना आरम्भ किया, तो आपही उसके लिए लेख लिखता, आपही प्रूफ शोधता, आपही पैकट बांधता, आपही ऐड्रैस लिखता और आपही ग्राहकों से पत्र व्यवहार करता था, इसके सिवाय उसको चलाने का कोई उपाय ही न था, क्योंकि सब कुछ

आप करके भी घंटा सहना पड़ता था। जब तक यह आवश्यकता बनी रही, मैंने सारा काम अपने हाथों किया, और कभी नहीं घबराया, क्योंकि उद्योग और परिश्रम करने से मैं जी नहीं चुराता, बल्कि इसमें मेरा मन प्रसन्न रहता है, मैं अब भी किसी विद्यार्थी से-कम परिश्रम नहीं करता। यह मैंने इस लिए लिखा है, कि अनुभव से बढ़कर कोई प्रमाण नहीं होता, और यह मुझे अपने अनुभव से पूरा निश्चय होगया है, कि एक छोटा सा नियम भी जो मनुष्य के स्वभाव में प्रविष्ट होगया हो, वह जीवन-पर्यन्त उस को बराबर लाभ पहुंचाता रहता है।

प्रायः सभी आर्य (हिन्दु) स्नान नित्य करते हैं, इस लिए यह उनका स्वभाव बन जाता है। वे जैसे जाड़ों में भी स्नान के बिना रह नहीं सकते। ठीक इसी प्रकार अभ्यास से बड़े २ उच्च भाव मनुष्य का स्वभाव बन जाते हैं, और जब स्वभाव बन जाते हैं, तो फिर उस के लिए वे कठिन नहीं रहते, सहज होजाते हैं, और उन के विरुद्ध जाना कठिन होजाता है।

जैसे एक छोटे बच्चे को गिरता देख कर मनुष्य उस के पास चुप चाप खड़ा नहीं रह सकता। उस को उठाने और दिलासा देने के लिए विवश होजाता है, रुक सकता ही नहीं। क्योंकि इतनी दयाशीलता मनुष्यों में रहने वाले हरेक मनुष्य में अवश्य आजाती है। इसी प्रकार सत्यभाषण, न्याय परायणता, परोपकार, शिष्टाचार आदि सद्गुणों को एक वार यत्न करके मनुष्य अपना स्वभाव बना ले, तो फिर ये उस के लिए कठिन नहीं रहते, बल्कि इन के विपरीत जाना उसके लिए कठिन होजाता है। यह मेरा पूरा निश्चय है, कि स्वभाव इसी तरह बनता है, और अच्छा स्वभाव ही मनुष्य को तारता है। परमात्मा की कृपा से मुझे सब प्रकार के लोगों से मिलने जुलने और उनकी संगति से लाभ उठाने का अवसर मिला है, उससे भी मेरे इस अनुभव को पुष्टि ही पुष्टि मिली है। जिस पुरुष में कोई एक भी उच्च भाव पाया जाता है, उसके बहुत से काम उस एक के कारण सफल होते हैं। हर एक पुरुष अपने

अन्दर ध्यान देकर इस बात को देख सकता है, कि उसको इस संसार में जितनी सफलता और प्रसन्नता प्राप्त होती है, वह किसी गुण के कारण है। अवगुण जो भी है, उसका फल बिगाड़ और दुःख ही होता है। सो जब एक भी उत्तम भाव मनुष्य का स्वभाव बनकर उसको बहुत बड़ा लाभ पहुंचाता है, तब सारे उच्च भाव यदि हमारा स्वभाव बनजाएं, तो हमारा जगत् में आना सफल होजाए, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। अतएव यह निश्चित है कि, मानुष जीवन को सफल बनाने वाले जो २ उच्चभाव हैं, और जिस प्रकार वे हमारे स्वभाव में प्रविष्ट हो सकते हैं, इस का शिक्षण मनुष्यमात्र को मिलना चाहिये। जीविका के लिए मनुष्य चाहे कोई विद्या और कला सीखे, पर सुख की ज़िन्दगी भोगने के लिए उदार स्वभाव की शिक्षा का मिलना हर एक के लिए अत्यावश्यक है, इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए बहुत से सज्जनों के अनुरोध से यह 'सफलजीवन' लिखा गया है, परमात्मा से प्रार्थना है, कि यह 'सफलजीवन' अपने उद्देश्य में सफल हो।

सफलजीवन ॥

श्रेयो मार्ग ।

(१)

बस बस श्रेयोमार्ग यही है,
उन्नति की बस राह यही है ।
आनन्दी बन सन्मार्गी बन,
बन दयालु तू मृदुभाषी बन ।
श्रेष्ठ सभ्य बन स्वाध्यायी बन,
सत बन सत का अनुयायी बन ।
व्यसनहीन बन बुद्धिमान् बन,
देशभक्त बन सावधान बन ।
बस बस श्रेयोमार्ग०

(२)

शिशु समान सुख का राशी हो,
स्वच्छ हृदय गुण अभिलाषी हो ।
परमविवेकी हो प्यारा हो,
सच्चा हो, जग-दृग-तारा हो ।
निज चरित्र का विश्वासी हो ।
महावीर हो दुख नाशी हो ॥
बस बस श्रेयोमार्ग०

(३)

धन सन्मान्य साफ सुथरा धन,
पढ़ने में अनुराग भरा धन।
सारे जग का सुखकारी धन,
आत्मनिष्ठ धन उपकारी धन।
स्वार्पण करने का नेमी धन,
गिरिधर प्रभुपद का प्रेमी धन।
बस बस श्रेयोमार्ग यही है,
उन्नति की बस राह यही है॥ (श्री गिरिधर शर्मा)

सफलजीवन किसे कहते हैं ?

'आज मेरा जीना सफल हुआ' यह वचन तो हर एक मनुष्य के मुंह से कभी न कभी सुनाई दे जाता है, पर सचमुच जिस ने अपना जन्म सफल किया है, ऐसा कोई विरला ही माई का लाल निकलता है। जीवन को सफल बनाना तो दूर रहा, सफलजीवन कहते किसे हैं? इसका जानने वाला भी कोई विरला ही होता है॥

यह सत्य है, कि सफलजीवन के लिए प्रेम सब के अन्दर है, कोई नहीं चाहता, कि मेरा जीवन निष्फल जाय, सब यही चाहते हैं, कि हमारा जीवन

सफल हो। जैसे फलों से लदा हुआ वृक्ष सब को भाता है, वैसे ही फलवान् जीवन सब को प्यारा लगता है, अत एव बड़े प्रेम और आदर से यह वचन बोला जाता है 'आज मेरा जीना सफल हुआ' किन्तु जब पुरुष एक छोटी सी सफलता पर इस वचन को बोलता है, तो वह अपने जीवन का मूल्य बहुत घटा देता है। हीरे कौड़ियों के मोल नहीं विकते, मानुष जीवन एक छोटी सी सफलता से सफल नहीं होता॥

तब सफलजीवन किसे कहते हैं? इसका उत्तर संक्षेप में यों दिया जासकता है। जो पुरुष अपने जीवन के उदाहरण से, और अपने प्रयत्नों से, मानवसमाज को उस से उन्नत अवस्था में ले आता है, जिस में कि वह उस के जन्म के समय था, उस के जीवन को सफलजीवन कहते हैं। तुम स्वयं नीरोग, बलिष्ठ, यशस्वी, तेजस्वी, विद्यावान, धर्मात्मा और उदारचित्त बनो, और अपने उद्योग द्वारा मानवसमाज में से अज्ञान पाप और दुःख को मिटा दो वा घटा दो,

तो तुम जानलो, कि तुम ने अपना जीवन सफल बना लिया है ॥

तुलसी जब जग में भये जगत हँसे तुम रोय ।
ऐसी करनी कर चलो कि तुम हँस मुख जग रोय* ॥

ऐसा सफलजीवन पाने के साधन ये हैं ।

दृढ़ संकल्प ।

मनुष्य जब अपने मन में किसी काम के करने का दृढ़ संकल्प कर लेता है, तो वह अवश्यमेव उस को पूरा कर लेता है । इस संसार में जो ऐसे महा पुरुष हुए हैं, जिन के कामों को देखकर लोग हैरान होते हैं, उन में, और हैरान होने वाले लोगों में, केवल एक ही बात का भेद है, अर्थात् दृढ़ संकल्प का । बुद्धदेव, स्वामिशंकराचार्य, कुमारिलभट्टाचार्य, स्वामि दयानन्दसरस्वती, गुरु नानकदेव, गुरु गोविन्दसिंहजी, शिवाजी महाराज, महाराणा प्रताप, महाराजा रण-

*याद दारी कि वक्ते ज़ादने तो,
हमा खन्दाँ बुदन्द तो गिरयां ।
आचुनाँ ज़ी कि वक्ते मुरदने तो,
हमा गिरयाँ बुवन्द तो खन्दाँ ॥

जीतसिंह, नैपोलियन बोनापार्ट, इन महानुभावों के शरीर और दिमाग जैसे उत्तम थे, उससे भी उत्तम शरीर और दिमाग रखने वाले, उन के समय में, और लोग विद्यमान थे, किन्तु जो उमंगें इन महापुरुषों के हृदय में उत्पन्न होती थीं, और उनको पूरा करने के लिए जैसा दृढ़ संकल्प मन में धार लेते थे, उस दृढ़ संकल्प का अभाव ही उन दूसरों में था। बल्कि कई महापुरुष तो ऐसे भी हुए हैं, जो शरीर और दिमाग़ में दूसरों से दुर्बल थे, पर बलवान् उन में यही दृढ संकल्प था। जब तक पुरुष ने किसी काम को करने का दृढ संकल्प नहीं किया, तब तक ही वह काम उसके लिए असाध्य होता है, जब उसने पक्का संकल्प कर लिया, कि पुरा किए विना कभी नहीं छोडूंगा, तब वह असाध्य नहीं रहता, साध्य होजाता है। छान्दोग्य उपनिषद् में लिखा है, कि संकल्प के बल से रोगी पुरुष नीरोग होसकता है, संकल्प के बल से महिदास ने ११६ वर्ष की आयु पाई। शाण्डिल्य ऋषि अपने अनुभव की बात कहता है, कि जब

मनुष्य पक्का इरादा कर लेता है, तो ब्रह्म को अवश्य-मेव साक्षात् करलेता है। माधवराय पेशवा ने मरते समय कहा, कि 'मेरी तीन इच्छाएं मन ही में रह गईं'—एक तो मैं गिलज़ई जाति के लोगों को परास्त करना चाहता था, दूसरे सुलतान हैदर अली को नीचा दिखाना चाहता था, और तीसरी बात यह है, कि मैं अपना ऋण चुकाना चाहता था' नानाफड़-नवीस वहां पर विद्यमान थे, उन्होंने यह सुनकर प्रतिज्ञा की, कि "इन तीनों बातों को मैं पूरा करूंगा" और उन्होंने तीनों बातें पूरी कर दिखाईं। वीरवर हम्मीर ने बचपन में जब यह दृढ़ संकल्प धार लिया कि "मैं चित्तौड़ का उद्धार करूंगा" उस समय उस के पास न धन था, न सेना थी, न राज्य था, तो भी उसने ऐसा बड़ा काम पूरा कर ही दिखाया। उपनिषद् में कहा है,—"पुरुष अपने संकल्पों का बना हुआ है" संकल्प में ऐसी शक्ति है, कि उसके द्वारा तुम जो बनना चाहो, बन सकते हो, और जो कुछ करना चाहो, कर सकते हो। सो तुम अपने मन में

दृढ संकल्प धारो, कि "मैं सदा सावधानी के साथ अपने शरीर को गठीला और फुर्तीला बनाऊंगा, और सदा अरोग रक्खूंगा, हृदय को सदा पवित्र और विशाल रक्खूंगा, और औरों को उन्नत करने में ही अपनी उन्नति मानूंगा" जब तुम ने इस प्रकार का दृढ संकल्प धार लिया, तो निःसंदेह तुम अपने जीवन को सफल बना लोगे ॥

संकल्पशक्ति अभ्यास से बढ़ती है, किसी बड़े काम में अपने ऊपर भरोसा रख कर हाथ डालो, उसको पूरा करने के लिये पूरा प्रयत्न करो, रुकावटों से डरो नहीं, लगे जाओ, और उस काम को पूरा करके छोड़ो, तब तुम्हारा मन और भी बढ़ जाएगा, और फिर तुम उस से बड़े काम को भी हाथ डाल कर कर सकोगे। इस प्रकार तुम्हारी संकल्पशक्ति बढ़ती जाएगी। तुम्हें अपने ऊपर भरोसा बढ़ता जाएगा, और यह निश्चय रक्खो, कि अपने ऊपर भरोसा ही सारी सफलताओं की कुंजी है। इस लिए न कभी निकम्मे बैठो, न सामने आए काम को भविष्य

पर टालो, किन्तु अपने छोटे बड़े कामों को लग कर पूरा करते जाओ, इस से तुम्हारा संकल्पबल सदा बढ़ता रहेगा।

काम करने की प्रकृति।

कई लोग ऐसे आलस्य के मारे हुए होते हैं, कि काम करने से सदा जी चुराते हैं। काम उनको पहाड़ प्रतीत होता है। चढ़ने वाले तो पहाड़ पर भी चढ़ते ही हैं, पर ये उनमें से नहीं होते। ये तो उनके साथी होते हैं, जो "कौन इतना ऊंचा चढ़े" कह कर नीचे ही डेरा लगा देते हैं। ये हाथ पाओं धारी लूले पिंगले जन जितने दिन जीते हैं, पृथिवी पर बोझ बने रहते हैं। काम करने में और अपने किये काम का इनाम पाने में जो आनन्द मिलता है, उससे ये सदा वञ्चित रहते हैं। दूसरे इन्हीं के निज़दीकी भाई बन्द ये दीर्घ-सूत्री होते हैं, जो कभी २ काम करते तो हैं, पर ध्यान देकर करने से जो काम उसी दिन निपट सकता हो, उसको भी 'कल, करेंगे, दो दिन के पीछे करेंगे, अगले महीने करेंगे' करते २ ही कई दिन बिता देते

हैं। ऐसे पुरुषों के काम भी बिगड़ते बहुत हैं, और सुधरते कोई २ हैं। ऐसे अभागे भी जीवन का पूर्ण सुख नहीं भोग सकते। और एक वे पुरुष हैं, जो अपने नियत काम के समय तो काम करते हैं, पर शेष समय व्यर्थ बैठे २ वा निकम्मी खेलों वा निरर्थक बातों में बिता देते हैं। नौकरी पेशा लोगों में कई ऐसे पुरुष भी देखने में आते हैं, जो छुट्टी के लंबे दिन को लंबी नींद से काटना चाहते हैं, तो भी वह कटने में नहीं आता। ऐसे पुरुष भी अपने जीवन को सफल नहीं बना सकते, चाहे उनके सांसारिक काम काज भले ही चलते रहें। हां एक ऐसे पुरुष होते हैं, जिनकी काम करने की प्रकृति होती है। जिस समय देखो, किसी न किसी काम में लगे होंगे, खाली कभी बैठ सकते ही नहीं, लेटे २ समय बिताना उनको बड़ी घबराहट में डालता है, वे बेकार से बेगार भली समझते हैं। ऐसे पुरुष यदि बुद्धिमत्ता के साथ अपनी और दूसरों की भलाई को लक्ष्य में रख कर काम करते हैं, तो निःसंदेह अपने जीवन को सफल बना लेते हैं। सो

यदि तुम अपने जीवन को सफल बनाना चाहते हो, तो काम करने की आदत डालो। काम से कभी जी न चुराओ, न सामने आए काम को भविष्य पर टालो। काम करते रहो और आगे बढ़ते रहो। हां सारा दिन एक ही प्रकार का काम न करते रहो, शारीरिक काम करने वाले को कुछ समय लिखने पढ़ने में, और दिमागी काम करने वाले को कुछ समय शारीरिक कामों में अवश्य लगाना चाहिये। सैर व्यायाम और खेलों को भी काम ही समझना चाहिये, इनसे स्वास्थ्य और बल बुद्धि की वृद्धि होती है। काम करने की प्रकृति बना लेने से तुम काम से कभी दबोगे नहीं, काम करने में तुम्हें सुख प्राप्त होगा, मन के सदा प्रफुल्लित रहने से आयु बढ़ जाएगी। हां यह नियम अवश्य है, कि एक तो चित्त से बाहर काम कभी न करो, दूसरा निरा अपनी ही उन्नति में संतुष्ट न रहो, दूसरों की उन्नति में भी सदा योग देते रहो बल्कि दूसरों की उन्नति में अपनी उन्नति समझो॥

आरोग्य, बल और दीर्घ आयु।*

आजकल रोगों और रोगों के कृमियों का बहुत कुछ पता लगायागया है। वैद्य, डाक्टर और हकीम भी बढ़े हैं। चाहिये था, कि रोगों और रोगियों की संख्या घट जाती, पर वह भी बढ़ी ही है। मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं, कि आरोग्य प्राप्त करने के लिए रोगों का पता लगाना बहुत लाभदायक नहीं होसकता। हमें रोगों से डरना छोड़ देना चाहिये, वैद्यों और औषधों को तिलाञ्जलि देकर प्रकृति (नेचर) से प्यार करना चाहिये। तनिक जंगली पशु पक्षियों को देखो, यह निश्चिन्त खुली वायु में प्रकृति से मिले जुले रहते हैं, वैद्यों और दवाफरोशों की आमदनी नहीं बढ़ाते। फल यह है, कि पशु पक्षी मनुष्यों की अपेक्षा अच्छा स्वास्थ्य रखते हैं, और कभी बीमार नहीं होते। अथवा जरा हबशियों और घुमन्तू जातियों की ओर ध्यान दो, इनके शरीर कैसे दृढ़ और अंग कैसे गठे हुए होते हैं, इनको पेटेन्ट

---

*प्रोफेसर फिल्प के एक व्याख्यान के आधार पर।

दवाओं वा लैंडो साहेब के इंजक्शनों की आवश्यकता नहीं, क्योंकि यह खुली वायु में स्वाभाविक जीवन बिताते हैं, हद से ज़्यादह खाना नहीं खाते, और अपना काम आप करते हैं, जिससे इन्हें अच्छा व्यायाम होजाता है।

पूरा आरोग्य, बल, और दीर्घ जीवन तो हरे भरे जंगलों में, पहाड़ों की चोटियों पर, दरयाओं के किनारों पर, खुली वायु में खुले आकाश के नीचे प्राप्त होता है, न कि शहरों की तंग अन्धेरी दुर्गन्ध से भरी गलियों में, इस लिए उत्तम तो यही है, कि शहरों में रहते हुए भी शहर की घनी बस्ती से बाहर खुले मकानों में रहो, और निम्न नियमों का पालन करो, पर यदि अगत्या शहर के अन्दर ही रहना पड़े, तौ भी इन नियमों का पालन करते रहो॥

१-शुद्ध वायु — जब अवकाश मिले, सैर के लिए बागों वा जंगलों वा दरयाओं के किनारे टहलने जाया करो, मकान की सारी खिड़कियां खुली रक्खा करो, रात को मुंह न ढांप लिया करो,

बल्कि मुंह पर कोई कपड़ा न डाला करो, जिस से शुद्ध वायु तुम्हारे फेफड़ों में प्रविष्ट होती रहे। कपड़े देह पर कस के न रक्खा करो, बल्कि कुछ ढीले, जिस से कि शुद्ध वायु मसामों में से शरीर में प्रविष्ट होती रहे। आग के पास बहुत न बैठा करो। हद से ज्यादह कपड़े पहनने के स्थान जब सर्दी लगे, तो कुछ व्यायाम करके वा चलफिर कर देह को गर्म कर लिया करो, इस से तुम्हारा बल और स्वास्थ्य दोनों बढ़ेंगे। सवेरे उठते ही शुद्ध वायु में घूमो, मुंह को बन्द रख कर नाक से सांस लिया करो, और शुद्ध वायु में खड़े रह कर मुंह को बंद रख कर नाक से धीरे २ लंबे सांस लिया करो।

२-पानी } प्यास लगने पर शुद्ध जल पियो, शुद्ध जल के पीने से मेदा साफ रहता है, हाज़मा बढ़ता है। शरबत से भी शुद्ध जल गुणकारी है। शराब कभी न पियो। पानी एक घूंट ही नहीं पी जाना चाहिये, बल्कि पक्षियों की तरह मुंह में लेकर थोड़ा २ घूंट भर २ कर पीना चाहिये।

नित्य स्नान करो, शुद्ध जल वाले नदी नालों में स्नान अधिक गुणकारी होता है। घर में न्हाना हो, तो टब में न्हाने के स्थान शरीर पर पानी डाल कर न्हाओ। पहले पाओं पर पानी डालो, फिर धीरे २ टांगों पर, फिर पेट पर, फिर छाती पर, फिर सिर पर डालो, अंगों को धीरे २ हाथों से रगड़ना बड़ा लाभदायक है। एक तो इस से मसाम खुलते हैं, दूसरा, मनुष्य के हाथ से एक प्रकार की शक्ति शरीर को पहुंचती है, जिस से शरीर फुर्तीला रहता है। स्नान ठंडे पानी से करो, यदि ठंडे से न्हाने का स्वभाव नहीं, तो आरम्भ में केवल एक तौलिये को पानी में भिगो कर शरीर पर फेर लिया करो, पर गर्मपानी से महीने में एक बार से अधिक कभी मत न्हाओ। गर्मपानी में न्हाना शरीर के लिए हानि-कर है, शरीर से बहुत सी शक्ति बाहर निकाल देता है। ठंडे पानी में स्नान करना सब से अच्छा पुष्टि-कारक और बल दायक है।

३-प्रकाश — ऐसे मकान में रहो, जहां सूर्य की किरणें खुली आती हैं। सूर्य की किरणें बहुत सी बीमारियों को जड़ से उखाड़ कर फेंक देती हैं। सभ्यता मनुष्य को कपड़े उतार कर बैठने से रोकती है, पर यह निःसंदेह है, कि सर्दियों में शरीर को धूप का स्नान कराने से स्वास्थ्य बढ़ता है। जंगली पशु पक्षी और मनुष्य जो खुली वायु और धूप में नंगे धड़ंगे फिरते हैं, उनको कभी कोई रोग नहीं सताता। सो सभ्यता को रख कर भी अलग एकान्त में नंगे बदन धूप के सेवन करने का लाभ कभी २ अवश्य उठाते रहना चाहिये।

४-आहार — आहार अपना पूरा फल उसको देता है, जिसको भूख खुब चमक कर लगती है। शहरों में रहने वालों में और विशेषतः पढ़े लिखों में बहुतेरे ऐसे पुरुष होते हैं, जिन को भूख चमक कर नहीं लगती। कारण यह है, कि न पूरा व्यायाम करते हैं, न चल फिर कर करने वाला कोई काम करते

हैं। अपना काम आप करो, और पूरा व्यायाम करो, तो तुम्हें भूख चमक कर लगेगी। भूख लगने पर किया भोजन बहुत स्वाद देगा और अच्छा पचेगा। उस में से सारा सार निकल कर तुम्हारे शरीर का हिस्सा बन जाएगा। इस अवस्था में साधारण आहार भी तुम्हारे लिए बहुत लाभदायक होगा। अमीर अपने भोजन को भांत २ की भाजियों आचारों पापड़ों और चट्टनियों से स्वादु बनाते हैं। गरीबों के भोजन को भूख अमीरों से भी अधिक स्वादु बना देती है, जिस के साथ एक ही दाल वा एक ही प्याज़ के सिवा और कभी २ खाली लवण के सिवा और कुछ भी नहीं होता। और यह भूख ही है, जो गरीबों को ऐसे सूखे भोजन से भी वह सार निकाल कर देती है, जो अमीरों को बहु मूल्य भोजनों से भी नहीं मिलता। अतएव गरीब सबल और अमीर दुर्बल होते हैं। यह कितने शोक की बात है, कि मालिक धनी तो बीमार और दुर्बल रहता है, और उसी का नौकर चंगा भला और हट्टा कट्टा बना

रहता है। इस लिए परमात्मा ने जो हाथ पाओं दिये हैं, उनको भी हिलाते रहो। निःसंदेह दिमाग़ परमेश्वर ने सोचने के लिए दिया है, पर साथ ही यह भी याद रक्खो, कि उस ने हाथ काम करने और पाओं चलने के लिए भी दिये हैं। जैसे दिमाग़ से काम लेते हो, वैसे ही हाथ पाओं से भी खूब काम लो। दिमाग़ी शक्ति के तुल्य ही तुम्हारे हाथ पाओं की शक्ति भी बढ़े, तब तुम्हें खूब भूख लगेगी। भूख लगने पर किया आहार बल, बुद्धि और आयु को बढ़ाता है।

भोजन करते समय सारा ध्यान चबाने की ओर देना चाहिये, यदि आहार को अच्छी तरह चबाया जाए, तो इस से दांतों को व्यायाम होजाता है, और दांत बुढ़ापे में नहीं गिरते। और दूसरा लाभ यह है, कि आहार खूब पिस कर अन्दर जाता है, और जल्दी हज़म होता है। यदि दांतों में पूरा न पीसा जाए, तो दांतों का काम पेट को करना पड़ता है। तीसरा लाभ यह है, कि बार २ चबाने में मुंह से एक प्रकार

का पानी निकल कर आहार में मिलजाता है, जो आहार को हज़्म करने में सहायता देता है। हर वक्त थूकते रहने की आदत बड़ी खराब है, उस से यह हज़्म करने का पानी व्यर्थ चला जाता है। दांतों को नित सांझ सवेरे धोलेना चाहिये; क्योंकि यदि दांत गंदे रहें, तो सारा सांस विषैला होकर लहू को बिगाड़ता है।

पके हुए उत्तम फल भी ज़रूर खाने चाहियें, फलों का रस रुधिर को शुद्ध करता और आयु को बढ़ाता है। फल में जो फललवण (फ्रूटसाल्ट) होता है, वह स्वास्थ्य को बहुत लाभ पहुंचाता है।

हमें दूध और मक्खन बहुत खाना चाहिये। मक्खन कब्ज़ को दूर करता है, और दिमाग़ को तरावत देता है। ताज़ह मक्खन आसानी से हज़्म हो जाता है। दूध में वे सब वस्तुएं पाई जाती हैं; जो जीवन स्थिति के लिए आवश्यक हैं। दही खाना भी लाभदायक है। दही दिल और दिमाग़ को ताज़ह करता है, और जीवन के नाशक कृमियों का शत्रु है।

५-वस्त्र } वस्त्र जहां तक होसके, कम पहनने चाहियें। गर्मियों में बनियान पहनना बहुत हानिकारक है। बनियान जब पसीने से भीगजाती है, तो शरीर कोमुलायम बना देती है, और मुलायम शरीर भांत २ के रोगों का घर बना रहता है; जिस का शरीर मुलायम होजाए, उसको ज़रा सर्दी गर्मी लगने से जुकाम होजाता है, जुकाम बहुत सतानेवाला और घृणित भीहै। जंगली मनुष्यों को देखो, कपड़े न पहनने से उनके शरीर कैसे दृढ़ होते हैं, उनको कभी गर्मी वा सर्दी से जुकाम नहीं होता। अतएव हमें भी ऐसी प्रकृति बनानी चाहिये, कि हमारा शरीर आसानी से गर्मी सर्दी सहारसके। गर्मियों में यदि ढीले कपड़े पहने जाएं, तो शुद्ध वायु आकर शरीर को ठंडा और प्रसन्न रखता है। सर्दियों में यदि ढीले कपड़े पहने जाएं, तो शुद्ध वायु आकर शरीर पर लगने से जिल्द गर्म होजाती है, और शरीर को गर्म और प्रसन्न रखती है। सो ढीले कपड़े सब अवस्थाओं में उपयुक्त हैं। और आपने देखा होगा, कि जो लोग

हद से ज़्यादह कपड़े पहने रहते हैं, वही ज़्यादह सर्दी अनुभव करते हैं। जूते ऐसे पहनने चाहियें, जो पाओं को भींचे न रक्खें। सिरको सदा ढांपे नहीं रखना चाहिये। मकान के अन्दर तो सदा सिर को खुला रखना चाहिये, मकान के बाहर भी धूप वर्षा वा अत्यन्त सर्दी के सिवाय सिर को ढांपे रहना अच्छा नहीं।

६ मालिश } हमें कभी २ तेल शरीर पर मल लेना चाहिये, इस से खाल को शक्ति मिलती है, और खाल उन कृमियों का सामना करने के योग्य होजाती है, जो जीवन के लिए हानिकारक हैं। तेल के कुल्ले करने से दांत दृढ होते हैं, और उनको कीड़ा नहीं लगता। सिर पर तेल लगाने से दिमाग में ताज़गी आती है। दही से सिर धोना है बड़ा लाभदायक, पर दही ताज़ा होना चाहिये, जो कि तीव्र गन्ध न छोड़े।

७ व्यायाम } व्यायाम करने वा अपना काम आप करने में हमें कभी लज्जा नहीं करनी चाहिये। व्यायाम उतना ही करना चाहिये, जिस से थकावट न हो। बल अधिक व्यायाम से नहीं बढ़ता,

किन्तु धीरे २ नित करने से बढ़ता है। व्यायाम के सिवा भी हाथ पाओं हिलाने का कोई काम करना चाहिये।

८ साधारण नियम } हमें कोई अनुचित काम नहीं करना चाहिये और उचित कार्य करने में दूसरे लोगों की सम्मतियों से नहीं डरना चाहिये। हमें सदा प्रसन्न रहना चाहिये, प्रसन्नता आयु को बढ़ाती है, शोक, और चिन्त आयु को घटाते हैं। शुद्ध स्वच्छ और सुन्दर वस्तुएं जीवन को अच्छा बनाती हैं। हमें खाना उस समय खाना चाहिये, जब भूख लगे, पानी उस समय पीना चाहिये, जब प्यास लगे। रातको पढ़ना आंखों को हानि पहुंचाता है। रातको जल्दी सो जाना चाहिये, और सूरज से पहले उठना चाहिये। सूरज निकलने के पीछे सोना विश्राम की अपेक्षा थकान अधिक उत्पन्न करता है। दिन के समय लहू जोर से दौरा करता है, इसलिए दिन को सोना हानिकारक है। रात सोने के लिए ही परमेश्वर ने बनाई है। गाना फेफड़ों को बलवान् बनाता और जीवन को प्रसन्न

रखता है। सुरमा-आंखों को उजला रखता है, और देखने की शक्ति को घटने नहीं देता। जिस ऋतु में जो वस्तु वा जो काम गुणकारी हो, उसका सेवन करो जो अवगुणकारी हों, उसको त्याग दो।

सावन साग, भादों दही। क्वार करेला कातिक मही *।
अगहन जीरा, पूसे धना†। माघे मिश्री फागुण चना।
चैते गुड़ वैसाखे तेल। जेठे पन्थ असाढ़े बेल।
इन बारह से बचे जो भाई। ताघर वैद्य न सपनेहु जाई।
कछुक भूखरख भोजन खावै। ताके निकटवैद्य नहिंजावै
भूख लगे जो भोजन करई। ताको वैद्य कबहुं नहिं चहई‡

बुद्धि शक्ति।

शरीर को नीरोग, दृढ़िष्ठ और वलिष्ठ रखते हुए तुम्हें अपनी बुद्धि और प्रतिभा को बढ़ाते रहना चाहिये। जन्म से ही मनुष्य का बल और बुद्धि बढ़ने

---

* मठा † धनिया।

‡ पंजाबी कहावत है—चेत वैसाख भवें, जेठ हाड़ सवें, सावन भाद्रों न्हावे, असूं कत्तें थोड़ा खावे। मघर पोह रूं हंडाए, माघ फग्गन तेल मलाए। ता घर वैद्य कदे नहीं जाए॥

आरम्भ होते हैं। छोटा बच्चा अपने आस-पास जो कुछ देखता है, उसको बड़े ध्यान से देखता है, और धीरे २ पहचानने लगता है। फिर मनुष्यों के मन के भावों और बाहर के कार्य्यों तथा दूसरे पदार्थों के कार्यों और प्रयोजनों को भी जानने लगता है। उस को लेने के लिए जब हाथ बढ़ाते हैं, तो झुकपड़ता है, उस से बातें करो, तो उन पर ध्यान देता है, और जानने लगता है, कि पानी से प्यास बुझती है, पानी घड़े में भरा रहता है और कौली में डाल कर पिया जाता है। चूल्हे में आग जलाते हैं, उस पर देगची रख कर दाल भाजी बनाते हैं और तवा रख कर रोटी पकाते हैं। पहले पहल वह थोड़ी सी बातें भी चिर काल में जानता है, फिर जल्दी २ बहुत सी बातों को जानने लगता है। और जिस नई वस्तु को देखता है, उस का नाम और उसके काम पूछता है। यहां तक कि यदि तुम उसे नई २ वस्तुएं दिखलाते रहो, और उसके प्रश्नों का उत्तर देते रहो, तो तुम चार ही वर्षों की आयु में उसकी बुद्धि को

बहुत बढ़ा हुआ पाओगे, और साथ ही भाषा ज्ञान में भी उसकी इतनी उन्नति देखोगे, कि वह प्रायः सारी बातें हमारी तरह समझा सकता होगा। जिस वेग के साथ उसकी बुद्धि और भाषाज्ञान इस समय बढ़ते हैं, यदि उसी वेग के साथ आगे भी बढ़ें, तो सहज ही मनुष्य बड़ा बुद्धिमान् और बहु भाषा भाषी बन जाए। पर आगे इस वेग के साथ नहीं बढ़ते। हालां कि आगे को इस से भी अधिक वेग के साथ बढ़ने चाहियें, क्योंकि अब उसकी बुद्धि शक्ति और धारणा शक्ति बलवती होगई है। फिर इस वेग से क्यों नहीं बढ़ते, इसका कारण यह है, कि आगे उतनी प्रबल इच्छा और वैसे साधन नहीं रहते। बच्चे के जो चारों ओर पदार्थ हैं, उनको जानने की उसे प्रबल इच्छा होती है, वह रातको भी जब तक जागता है, चांदने में रहना चाहता है, ताकि उसका देखना बंद न हो। दिये का बुझना उसे प्रतिकूल भासता है, वह अन्धेरे में रहना नहीं चाहता। नई २ वस्तुओं का देखना उसे बड़ा पसन्द आता है, इसी लिए वह बाहर जाने

के लिए उत्सुक रहता है। यह प्रबल इच्छा उसकी बुद्धि को वेग से बढ़ाती है। जब इन व्यवहार्य विषयों में उसे सर्वसाधारण के तुल्य ज्ञान होजाता है, तो जिज्ञासा निवृत्त होजाती है। इसी प्रकार भाषा के जानने के लिए भी पहले उसकी प्रबल इच्छा होती है, जब उसे भाषा ज्ञान सर्वसाधारण के बराबर हो जाता है, तो यह जिज्ञासा भी निवृत्त होजाती है। दूसरा कारण वेग से बुद्धि के बढ़ने का यह होता है, कि उस के आस पास जितने लोग होते हैं, वे सब उन वस्तुओं और उन के प्रयोजनों को जानते हैं और वर्तते रहते हैं, इससे उसे चारों ओर से अमली शिक्षा मिलती रहती है। और अमली शिक्षा ऐसी होती है, कि न उस में मन उकताता है, न दिमाग़ को थकावट होती है, प्रत्युत मन प्रसन्न होता है, और दिमाग़ तरो-ताज़ह होता है। भाषा का ज्ञान भी इसी लिए वेग से होता है, कि चारों ओर से उसे अमली शिक्षा मिलती रहती है। यदि ऐसी ही प्रबल इच्छा और ऐसी ही अमली शिक्षा आगे भी मनुष्य के सामने

होती रहे, तो सहज ही मनुष्य पदार्थ ज्ञान में और अनेक भाषाओं के ज्ञान में पूर्ण विद्वान् हो जाए। देखो स्कूल में पढ़ने वाला विद्यार्थी कितने वर्षों में जाकर अंगरेजी भाषा में निपुण होता है, और फिर भी हर बात में उन के बराबर नहीं होता, जिन की मातृभाषा अंगरेजी है। पर यदि उसी बच्चे का अंगरेज बच्चों के साथ रहने सहने खेलने कूदने का प्रबन्ध करदो, देखो कितनी जल्दी बिन पढ़े ही अंगरेजी सीखलेता है, और कैसा शुद्ध उच्चारण करता है। ऐसे ही अमली शिक्षा से हर एक विद्या सीखी जाती है। सो हर एक भाषा और विद्या सीखने के मुख्य साधन उत्कट इच्छा और अमली शिक्षा है। विद्यालयों में पूरी तो नहीं, तौ भी कुछ २ यह इच्छा उत्तेजित होती है, और विज्ञान आदि की अमली शिक्षा भी दी जाती है। सो तुम चाहे विद्यालय में पढ़ते हो, और चाहे कार्य व्यवहार में लगे हो, बुद्धि को बढ़ाने की इच्छा सदा अपने अन्दर जागती रक्खो, हर एक बात को जानने और समझने की इच्छा रक्खो, अपने कार्य

रहेंगे, वह चरित्र उसी के नाम पर गाया जाता रहेगा। ऐसी महिमा वाले चरित्र की सदा रक्षा करो। धन ऐश्वर्य को कमाओ और भोगो, पर ध्यान रक्खो, कमाई में और भोग में अपना ऊंचा चरित्र दिखलाओ, जो औरों के लिए आदर्श बने। राज्य के लिए जो भाई भाई आपस में लड़ मरते हैं, जिस प्रकार श्रीराम और भरत ने उनकी ओर नहीं देखा, किन्तु राम ने बड़ी प्रसन्नता से भरत के लिए राज्य छोड़ने में, और भरत ने उनको प्रत्यर्पण कर देने में ही प्रसन्नता मान कर भ्रातृ भाव का सच्चा आदर्श दिखला दिया। इसी प्रकार तुम भी उनकी ओर मत देखो, जो कारोबार में अपने चरित्र से फिसल जाते हैं, किन्तु तुम अपने चरित्र को शुद्ध और ऊंचा रख कर व्यापार में सच्चे व्यापारी का, नौकरी में सच्चे नौकर का और स्वामित्व में सच्चे स्वामी का आदर्श बन कर दिखलाओ, इस से तुम्हारा आत्मा ऊंचा होगा, और तुम्हारा काम सब से बढ़ कर फले फूलेगा।

वे लोग, जो इस लिए चरित्रवान् बनते हैं, कि

लोग उनको अच्छा समझें वे सुख में तो चरित्रवान् बने रहते हैं, पर जब किसी बड़ी परीक्षा में पड़जाएं, तो झट बहाने ढूंड कर बचने का प्रयत्न करते हैं। वे सच्चे चरित्रवान् नहीं। सच्चे चरित्रवान् वे हैं, जो दिखलावे के लिए नहीं, किन्तु अपने हृदय से चरित्र की रक्षा करते हैं। श्रीरामचन्द्र को माता ने कहा, कि "पिता ने तुम को वन की आज्ञा दी है, मैं तुम को यहीं रहने की आज्ञा देती हूं"। धर्मशास्त्र के अनुसार माता की आज्ञा पिता से बढ़ कर माननीय है। यदि कोई सच्चे चरित्रवाला न होता, तो उसको ठहरने का बड़ा अच्छा बहाना मिल गया था। पर श्रीरामचन्द्र जी जो सच्चे चरित्रवान् थे। बहाने को कब पास फटकने देते थे, झट उत्तर दिया, माताजी "यह सत्य है, कि मुझे आपकी आज्ञा पिताजी की आज्ञा से बढ़कर माननीय है, पर आप को भी अपने पति की आज्ञा उल्लंघनीय नहीं है। तुम्हारा धर्म इस समय यही है, कि अपने पति की आज्ञा को सिर पर धार कर मेरे वनजाने के लिए स्वस्तिवाचन करो"। फिर जब चित्रकूट पर

भरत ने बहुत सी विनति कर के यह वचन कहा, कि पिताजी ने यह राज्य मुझे दिया है, अब यह मेरा है, मैं आप को देता हूं, फिर आपको क्या वक्तव्य होसकता है। यह अब बड़ा अच्छा वहाना था, पर राम मैं वह आत्मा था, जो धर्म पालन में किसी वहाने को निकट नहीं आने देता था, झट उत्तर दिया; "हां यह ठीक है, कि पिता ने राज्य तुम्हें दिया है, वह तुम्हारा है, पर मुझे भी तो पिताजी ने वनवास दिया है। भाई! पिताजी का वचन तभी पूरा होसकता है, यदि तुम राज्य करो, मैं बन में रहूं"। यह है असली चरित्र, ऐसे चरित्र को अपना लक्ष्य बनाओ।

वित्ते त्यागः क्षमाशक्तौ दुःखे दैन्य विहीनता।
निर्दम्भता सदा चारे स्वभावोऽयं महात्मनाम् ॥

धन होते हुए दान देना, शक्ति होते हुए क्षमा करना, दुःख में दीनता न दिखलाना, और सदाचार में बहाना न ढूंढना, यह महात्माओं का स्वभाव है ॥

सत्यप्रियता।

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः।
अश्रद्धा मनृते दधाच्छ्रद्धांᳬ सत्ये प्रजापतिः (यजु १९।७७)

प्रजापति ने सत्य और झूठ इन दोनों रूपों को अलग २ कर दिया है, और (मनुष्य के हृदय में) झूठ के लिए अश्रद्धा और सत्य के लिए श्रद्धा स्थापन की है।

सचाई की कदर मनुष्य के हृदय में स्वाभाविक है। और इतनी बड़ी है, कि जब कभी कोई झूठ बोलता है, तो ऐसी रचना रचता है, कि उसका वह झूठ झूठ प्रतीत न हो। सच प्रतीत हो। बस यह पूरा प्रमाण है इस बात का, कि उस के मन में सचाई की ही कदर है, झूठ की नहीं। जिस तरह उस स्त्री के मन में सुच्चे गहने की ही कदर है, जो उस गहने को खरीदती है, जिस पर इतना मुलम्मा चढ़ा हो, कि सुच्चा दिखाई दे। पर झूठा गहना पहनती वह है, जिस के पास सुच्चा होता नहीं। तब झूठा मनुष्य कितना पतित होता है, कि वह सचाई को रखता हुआ भी झूठ बोलता है। सो तुम सदा सावधान रहो, धन जब पास है, तो अमीर बनो, क्यों कंगले बनते हो, सचाई जब पास है, तो सच्चे बनो, क्यों झूठे बनते

हो। ईश्वर ने जो तुम्हारे हृदय में सचाई के लिए श्रद्धा स्थापन की है, उसको सदा सामने रक्खो, इस ईश्वरीय आज्ञा का कभी उल्लंघन न करो।

अच्छा, जब मनुष्य का हृदय स्वभावतः सचाई को प्यार करता है, तो फिर लोग झूठ बोलते क्यों हैं? सुनो। झूठ, भय से, लोभ से, द्वेष बुद्धि से मिथ्याभिमान से उपहास और मनोरञ्जन के अभिप्राय से बोला जाता है। जब कोई पुरुष किसी कर्तव्य कर्म को त्यागता है, वा कोई अनुचित कर्म कर बैठता है, तो लोकनिन्दा के डर से वह झूठ बोल कर उसे छिपाता है, इसी प्रकार दण्ड पाने वा धिक्कारे जाने के भय से घर में लड़के लड़कियां मां बाप के सामने, पाठशाला में विद्यार्थी अध्यापकों के सामने, नौकर मालिकों के सामने, और अभियुक्त मनुष्य जज्जों के सामने झूठ बोलते हैं। व्यापारी अपने व्यापार में, कारीगर और मजदूर अपने काम में, अर्थी और प्रत्यर्थी कचहरियों में लोभ के कारण झूठ बोलते हैं। अपने शत्रुओं पर लोग द्वेषबुद्धि से झूठे

कलंक लगाते हैं। और मिथ्याभिमान के कारण लोग अपनी जानकारी के विषय में झूठ बोलते हैं। जो बात कहावत के तौर पर सर्वत्र प्रसिद्ध हो, उसको वह अपने नगर वा गाओं की घटना बतलाएंगे। कोई अद्भुत वस्तु जो उन्होंने दूसरे से सुनी हो, उसको अपनी देखी हुई बतलाएंगे। निदान चमत्कारी बातों का और चमत्कारवाले पुरुषों का अपने साथ यूं ही सम्बन्ध बतलाने में कोई संकोच न करेंगे। उपहास में लोग मनोरञ्जन के लिए मिथ्या बोलते हैं। कविजन भी मनोरञ्जन के लिए मिथ्या बोलते हैं। पर यह न समझना चाहिये, कि इन कारणों में से कोई कारण न हो, तो पुरुष कभी झूट न बोलेगा, ऐसा नहीं है, जब मनुष्य को झूठ की आदत पड़ जाती है, तो बिना प्रयोजन भी झूठ बोल देता है। नीच मनुष्य आठ आने के लिए तो झूठी गवाही देते ही हैं, पर कई नीचतम धर्मार्थ ही जाकर झूठी गवाही दे आते हैं। सर्वथा झूठ का आदि कारण स्वार्थ ही होता है, फिर वासना भी कारण बन जाती

है। जब कोई मनुष्य अनुचित काम कर बैठता है, तो वह सोचता है, कि अब इस के मान लेने में मुझे दण्ड भुगतना पड़ेगा, लोक निन्दा भी सहनी पड़ेगी, इस लिए अब इस से मुकर जाना ही अच्छा है, यह निश्चय कर के वह झूठ बोलता है। पर यह समझ उसकी खरी नहीं, इस से उसको बड़ी भारी हानि उठानी पड़ती है। यह आवश्यक नहीं, कि झूठ बोल कर वह बच ही जाय, पर यदि उस समय बच भी जाय, तो भी उस का हृदय भयभीत बना रहता है। और अधिक मलीन होजाता है। दोष को छिपाने से मनुष्य निर्दोष नहीं होजाता, प्रत्युत झूठ बोलकर दुगना अपराधी बनता है, और उस के मलीन हृदय से सारे उच्च भाव एक २ कर के धीरे २ कूच कर जाते हैं। पर यदि वह साफ २ अपना दोष मान लेता है। तो वह इस सत्य बोलने के प्रभाव से प्रायः दण्ड से बच ही जाता है, अथवा उसका दण्ड हलका होजाता है। पर यदि सत्य बोल कर पूरा भी दण्ड भुगतना पड़े, तो भी सत्य के प्रभाव से उसका हृदय

जितना उन्नत होजाता है, उसके सामने वह दण्ड कोई चीज़ ही नहीं। जब दिलेरी के साथ सत्य २ कहने और उसका दण्ड भुगतने के लिए तय्यार होजाता है, तो भय उस के हृदय से दूर भाग जाता है। और फिर कभी उस के हृदय में आकर उसको झूठ बोलने की प्रेरणा नहीं करता। पर जो मिथ्यावादी है, वह सदा भयभीत रहता है। भय उसके हृदय पर अधिकार जमा लेता है। उसका सारा जीवन अभयपद के परम सुख से वञ्चित होजाता है। सो तुम्हारी पहली बुद्धिमत्ता यही है, कि सावधान रहो, कभी अनुचित काम न करो। पर यदि भूल चूक हो ही जाय, तो फिर निर्भय होकर सच २ कह दो, दण्ड को उसका प्रायश्चित्त समझो। और आगे के लिये सावधान हो जाओ। सत्य कहने में यह बहुत बड़ा लाभ है, कि सत्यवादी सदा अनुचित व्यवहार से बचता है। सभी लोग सदा सत्य बोलने की प्रतिज्ञा कर लें, तो झूठ के साथ शेष सारे पाप भी मनुष्यलोक से भाग जाएं। व्यापारी जो लोभ में आकर झूठ बोलते हैं,

वे भी लाभ नहीं, हानि ही उठाते हैं। सच्चे व्यापारी का धीरे २ विश्वास बढ़ता है, उस के गाहक बढ़ते जाते हैं, और अन्ततः उसी का व्यापार चमकता है। और झूठ से जीविका चलाने वालों का हाल सदा बेहाल रहता है। द्वेषबुद्धि से जो किसी पर झूठे कलंक लगाता है, वह कुछ समय के लिए तो उस का हैरान कर देता है, पर अन्ततः आप ही हानि उठाता है। क्योंकि झूठ विदित होने पर उसकी सारी बातें अविश्वसनीय होजाती हैं। फिर उसकी सच्ची निन्दा भी झूठी ही समझी जाती है। और जो मिथ्याभिमान से झूठी गप्पें और डींगें हांकता रहता है, वह अपना और दूसरों का निकम्मा समय गंवाता है। अनुचित आग्रह से भी मनुष्य झूठा पक्ष ले लेते हैं, इस से भी बचना ही अच्छा है। आग्रह वा पक्षपात सदा सत्य का ही उत्तम गिना जाता है।

सो झूठ के कारणों को जान कर वीरता से उन का सामना करो। झूठ को कभी निकट न आने दो। सदा निष्कपट और साफ व्यवहार करो। जो मन में

है, वही वाणी में लाओ, और जो वाणी में लाते हो, उसको पूरा कर दिखलाओ। स्मरण रक्खो—

मनस्यन्यद् वचस्यन्यद् कार्ये चान्यद् दुरात्मनाम।
मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम॥

मन में और, वाणी में और, और कार्य में और यह दुर्जनों का लक्षण है। मन में एक वाणी में एक और कर्म में एक यह महा पुरुषों का लक्षण होता है। (अर्थात् महापुरुष सदा उसी बात को वाणी पर लाते हैं, जो हृदय में वर्तमान होती है, इस के विपरीत बोलना दुर्जनों का काम है।

नास्ति सत्यसमो धर्मो न सत्याद् विद्यते परम्।
नहि तीव्रतरं किञ्चिदनृतादिह विद्यते॥

सत्य के बराबर कोई धर्म नहीं, सत्य से बढ़कर कुछ नहीं, और झूठ से बढ़कर कुछ क्रूर नहीं।

भाषण के अन्य नियम॥

तास्तु वाचः सभायोग्या याश्चित्ताकर्षणक्षमाः।
स्वेषां परेषां विदुषां द्विषामविदुषामपि॥

सभा के योग्य वे वचन होते हैं, जो अपने बेगाने पण्डित मूर्ख सब के चित्त को खींचने की शक्ति

रखते हैं, यहां तक कि शत्रुओं के चित्त को भी खींचलें।

सदा मधुर वचन बोलो। मधुर वचन लोगों के चित्त को हर लेता है। पत्थर हृदयों को भी नरम कर देता है, शत्रु को भी मित्र बना देता है। कठोर भाषण से अपने भी बेगाने होजाते हैं, और मधुर भाषण से बेगाने भी अपने होजाते हैं।

वाङ्माधुर्यान्नान्यदस्ति प्रियत्वं।
वाक्पारुष्याच्चोपकारोपि नेष्टः॥
किं तद्द्रव्यं कोकिलेनोपनीतं।
को वा लोके गर्दभस्यापराधः॥

वाणी की मधुरता से बढ़कर संसार में कोई मधुरता नहीं, कड़वी वाणी से कोई उपकार भी करे, तो प्यारा नहीं लगता। कोयल (बोलते समय) क्या लाकर दे देती है, और गधा क्या ले जाता है।

ऐसी बोली बोलिये मन का आपा खोय।
औरहु को शीतल करै आपहु शीतल होय॥
कागा कासों लेत है कोयल का को देत।
तुलसी मीठे वचन तें जग अपनो कर लेत॥

प्रियवाक्य प्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः।
तस्मात् प्रियं च वक्तव्यं वचने का दरिद्रता ॥

प्रिय वचन बोलने से सब मनुष्य प्रसन्न होते हैं, इस लिये सदा प्रिय बोलना चाहिये, वचन में क्या दरिद्रता (कंगाली) करनी ।

पर मधुर वचन का सत्यता से सदा मेल रहना चाहिये। खुशामद वा ठगने के लिए जो मधुर वचन बोले जाते हैं, वे पाप ही कहलाते हैं। प्रधान नियम सत्य बोलने का है, मधुर वचन उसका अंग है, अर्थात् जब बात करो, तो बोलो सत्य ही, पर मीठी बोली बोलो। कठोर शब्द न बोलो। और यदि सत्य वचन, जिस में दूसरे का हित होता हो, कठोर भी कह दो। जैसा कि कहा है—

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम् ।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ॥
पुरुषाः बहवो राजन् सततं प्रिय वादिनः ।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥

मनुष्य को चाहिये, कि सत्य बोले और प्रिय बोले, न सत्य अप्रिय बोले, न प्रिय असत्य बोले, यह सनातन मर्यादा है ।

हे राजन्! बहुत पुरुष हैं, जो सदा प्रिय बोलते हैं (दूसरे के मन भाती ही बात कहते हैं) पर अप्रिय हित वचन का कहने और सुनने वाला दुर्लभ है।

जब किसी इष्ट मित्र से मिलो, तो उस के बुलाने में पहल तुम करो, उसका कुशल क्षेम और उस के हित की बात पूछो। जो बात वह कहे वा पूछे, ध्यान से सुनो। इससे उसका मन प्रसन्न होगा, और तुम्हारा आपस का प्रेम बढ़ेगा। पर जो अपने इष्ट मित्र से मिल कर निरर्थक लंबी चौड़ी हकीकतें छेड़ देता है, उस के मित्र उस के मिलने से घबराते हैं।

सभा में सुनना और बोलना दोनों बहुमूल्य होते हैं। पर बोलो तभी, जब तुम्हारे बोलने की बारी हो, वा आवश्यकता हो वा आदर सन्मान से तुम्हें बोलने को कहा जाए। और बोलने से पहले सुनने वालों पर दृष्टि डाल लो, फिर ऐसी वक्तृता दो, जो सब की समझ में आए, और सब के लिए हितकर हो, किसी व्यक्ति विशेष पर कटाक्ष न करो, बल्कि तुम्हारे शब्द भी ऐसे न हों, जिन से कोई अपने ऊपर कटाक्ष समझ ले। अपना

भाषण सरल रक्खो, न वागाडम्बर में पड़ो, न इतना गहरा जाओ, जो श्रोताओं की पहुंच से परे हो ॥

चलते २ बात चीत करने में कई पुरुष सुनने वाले के निकट २ ढुकते आते हैं, और उसको एक ओर धकेलते लेजाते हैं, यह आदत बुरी है, ऐसी आदत न पड़ने दो। और न ही बात करते समय सुनने वाले का हाथ पकड़ो। यदि वह तुम्हारी बात पर ध्यान नहीं देता, तो उसका हाथ पकड़ने की जगह अपनी जीभ को पकड़ो। गोष्ठि में जो विषय प्रचलित हो, उसी पर बात करो, विषयान्तर में न जाओ, अपने मुंह से अपनी प्रशंसा न करो, न दूसरों की निन्दा में प्रवृत्त हो, शपथ कभी न खाओ, न किसी को शपथ दो, न ही शपथ पूर्वक कही बात पर विश्वास करो। व्यर्थ विवाद न उठाओ, जो बात वाद विवाद होकर निर्धारित होनी हो, उस में शान्त भाव से युक्ति युक्त विवाद करो, पर किसी पर ताना न कसो, न किसी की बात को हंसी में उड़ाओ, किन्तु अपनी बात मनवाने के लिए अपनी सचाई,

युक्ति युक्त प्रतिपादन, मधुर भाषण और सुन्दर उच्चारण पर अधिक भरोसा रक्खो।

शिष्टाचार।

भद्रपुरुषों का जो आचार है, उसका नाम शिष्टाचार वा सदाचार है। शिष्टाचार के अन्दर मनुष्य के सारे कर्तव्य आजाते हैं, किन्तु व्यवहार में दूसरों के साथ अच्छे वर्ताव का नाम ही शिष्टाचार प्रसिद्ध है, उसी से यहां हमारा अभिप्राय है। वर्ताव का सीधा सादा लक्षण यह है।

यदन्यैर्विहितं नेच्छेदात्मनः कर्म पूरुषः।
न तत्परेषु कर्तव्यं जानन्नप्रियमात्मनः॥ (महाभारत)

पुरुष जैसा बर्ताव दूसरे से अपने लिये न चाहे, उसको अपना अप्रिय जान आप भी दूसरे के साथ न बर्ते।

भाईचारे में जो दूसरों के सुख दुःख में सम्मिलित होता है, उस के सुख दुःख में सब सम्मिलित होते हैं, और जो किसी के घर नहीं जाता, उस के घर भी कोई नहीं पहुंचता। ठीक इसी तरह बर्ताव में हमारा

सारे संसार से भाईचारा है। यदि तुम चाहते हो कि लोग तुम्हारा सम्मान करें, तो तुम भी सब का सम्मान करो, उनका भी सम्मान करो, जो तुम्हारे बराबर धनवान् वा विद्वान् नहीं हैं। और यदि चाहते हो, कि कोई तुम्हें गाली न दे, कठोर वचन न कहे, तो तुम भी किसी को गाली न दो, न कठोर वचन कहो। यदि तुम चाहते हो, तुम्हें कोई धोखा न दे, तुम से छल कपट न करे सब तुम्हारे साथ सरल होकर वर्तें, तो तुम स्वयं पहले अपने अन्दर इन गुणों को धारण करो। यदि तुम चाहते हो, कि कोई तुम से ईर्षा न करे, तो तुम भी किसी से ईर्षा न करो। तुम दूसरों की उन्नति में प्रसन्न होगे, तो वे तुम्हारी उन्नति में प्रसन्न होंगे। निदान जैसे हर एक बीज अपने सदृश लाता है, इसी प्रकार तुम्हारे वर्ताव का बीज अपने सदृश तुम्हारे लिए फल लाएगा।

घर आए सम्बन्धी बान्धव इष्टमित्र आदि का यथायोग्य आदर सत्कार करना शिष्टाचार का एक प्रसिद्ध अंग है। हमारे पूर्वज इस अंग को बड़ी ही

उदारता से पालन करते थे। यहां तक कि कोई अपरिचित पुरुष भी उनके घरों में आजाता, तो उस का भी वे पूरा आदर सत्कार करते थे, और उसको उत्तम भोजन कराकर आप पीछे भोजन करते थे। और इसको वे यज्ञ वल्कि महायज्ञ कहते थे। पञ्च महायज्ञों में इसका नाम नृयज्ञ, मनुष्ययज्ञ वा अतिथि यज्ञ है। इसी से जान लो, कि असली शिष्टाचार केवल आगत स्वागत करने का ही नाम नहीं, बल्कि दूसरे के लिए स्वार्थत्याग का नाम शिष्टाचार है। जो पुरुष अपना स्वार्थ साधने के लिए दूसरे को हानि पहुंचाता है, वह शिष्ट नहीं कहला सकता। तुम अपने तुल्य ही दूसरों का भला चाहो; उन को भली सम्मति दो, उन के काममें जहां तक तुम से सहायता होसकती है, खुले दिल से दो, यह शिष्टों का लक्षण है।

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

यह अपना है, यह पराया है, यह गिनती छोटे

दिल वालों की होती है, विशाल हृदय पुरुषों के लिए तो सारी भूमि ही कुटुम्ब है (अर्थात् वे किसी को अपनी सहायता का अपात्र नहीं समझते)।

सभ्यता।

जब हम जन समुदाय में रहते हैं, तो हमें सभ्यता अवश्य सीखनी चाहिये। बहुत से पुरुष होते हैं, जो नगरों और पुरियों में रहते हुए भी असभ्य ही रहते हैं। वे लोगों की दृष्टि में कभी आदरणीय नहीं होसकते। कई धनी और विद्वान् भी ऐसे होते हैं, जिन में सभ्यता के साथ असभ्यता की भी कई बातें पाई जाती हैं, वे बातें उनकी योग्यता पर कलंक होती हैं, इसलिए जब हम जन समुदाय में रहते हैं, तो हमें सभ्यता की छोटी २ बातों पर भी अवश्य ध्यान देना चाहिये। एक तो जिन चेष्टाओं पर लोगों को हंसी आती है, वे असभ्यता में गिनी जाती हैं। यदि कोई सभा में प्रवेश करते समय इतनी तेज़ी करता है, कि झटाझट जूता उतारने और पैर अन्दर रखने में एक पैर जूते का सभा के अन्दर जा पड़ता है, तेज़ी से उस को

पिछले पाओं पीछे हटाता है, तो वह लात पर जा- लगता है, वा स्वयं दीवार से टकरा जाता है। बैठने लगता है, तो सिर से टोपी गिर पड़ती है, उसको उठाने लगता है, तो हाथ से सोटी गिर पड़ती है। अथवा यदि कोई सभा में जाकर अपने आप अपनी बड़ाई दिखलाता है, ऐसी जगह पर जा बैठता है, जहां उसकी योग्यता नहीं, उन बातों में सम्मति देता है, जिन में उसको हक नहीं। बात २ में दूसरों से उलझ पड़ता है। आधी बात कर के 'बाकी मैं भूल गया' कह देता है, वा बात २ पर कोई तकिया कलाम बोलता है इत्यादि। ऐसी चेष्टाओं से मनुष्य दूसरों का हास्यास्पद होता है। सो तुम हर एक ऐसी चेष्टा से सावधानी के साथ बचते रहो, जिस से मनुष्य दूसरों का हास्यास्पद होता है।

दूसरी वे चेष्टाएं, असभ्यता में गिनी जाती हैं, जिन से लोगों को घृणा होती है। जैसे कई लोग लोगों के सामने नाक में उंगली डालते हैं, लोगों के सामने नाक साफ करते हैं, नाक का बाजा बजाते हैं, रूमाल

पर नाक साफ करके उसकी ओर देखते हैं, नाक साफ करके कुर्त्ते वा कोट की बांह से नाक पोंछते हैं। वा जहां बैठते हैं, पास ही भूमि वा दीवार पर बार २ थूकते हैं। ऐसी चेष्टाएं घृणाजनक हैं, इन से सर्वथा बचना चाहिए।

तीसरी वे चेष्टाएं असभ्यता में गिनी जाती हैं, जो समाज में लज्जाजनक गिनी जाती हों। नगर में नंग धड़ंग फिरना, वा लोगों के सामने मूत्रत्याग करना, वा जो बातें स्त्रियों के सामने अकथनीय हों, उनका स्त्री पुरुषों के सम्मिलित समाज में मुंह से निकालना, वा गाली देने का तकिया कलाम।

चौथी वे चेष्टाएं, जिन से लोगों को उदासीनता हो, वा व्यर्थ हों, जैसे किसी के पास खड़े होकर अंगड़ाई लेना, जम्भाई लेते समय मुख फाड़ कर दिखलाना (जम्भाई में मुख के आगे हाथ रखना चाहिये) जीभ बाहर निकालना, नख कतरना, तिनके तोड़ते रहना, हाथ घिसना, अपने शरीर पर हाथ फेरते रहना, मुंह बनाना, नाक सिकोड़ना, चुटकी बजाते

रहना इत्यादि चेष्टाएं व्यर्थ हैं और इन से लोगों को उदासीनता होती है ॥

ऐसे सावधान रहो, कि ऐसी कोई भी असभ्य आदत तुम में न आने पाए। अपना रहन सहन, वेष भूषा, चाल ढाल, आहार विहार, बात चीत, ऐसे सुन्दर ढंग पर रक्खो जिस से लोग तुम्हारे व्यवहारों पर मोहित होकर तुम्हारे व्यवहारों से शिक्षा ग्रहण करें।

धैर्य और विवेक बुद्धि

संसार की समर स्थली में धीरता धारण करो। चलते हुए निज इष्टपथ में संकटों से मत डरो (मैथिली शरण गुप्त)

धैर्य और विवेक बुद्धि दोनों संग २ चलते हैं, विवेक बुद्धि धैर्य को उत्पन्न करती है, और धैर्य विवेक बुद्धि को उत्पन्न करता और स्थिर रखता है। धैर्य और विवेक बुद्धि धर्म के प्रधान अंग हैं, और सफलता के प्रधान साधन हैं।

कई विद्यार्थी जब परीक्षक के सामने जाते हैं, तो घबरा जाते हैं, उनका दिल धड़कने लगता है। घबराहट में वह बात भूल जाते हैं, जो उनको पहले

याद होती हैं। पीछे कहते हैं, चंगी भली यह बात मुझे याद थी, पर उस समय याद न आई। पर उन को जानना चाहिये, कि यह सारा दोष उनकी घबराहट का था। मन में कभी घबराहट न लाओ, ध्यान देकर बात सुनो, और धैर्य रखकर उसका उत्तर दो, तो याद की हुई सारी बातें तुम्हें याद आजाएंगी, बल्कि भूली हुई भी याद आजाएंगी, हां नई बात का भी उत्तर फुर आएगा।

विवेक और धैर्य के अभाव से छोटी २ बातों पर लोगों में लड़ाई झगड़े होते दीखते हैं। एक बार देखने में आया, कि एक गली की मोड़ से एक पुरुष बाहर निकला, दूसरी ओर से दूसरा पुरुष तेज़ी से आरहा था, दोनों टकरा गए, एक का पाओं बदरौ में जा पड़ा। उस ने दूसरे को झट गाली निकाल दी, दोनों आपस में लड़ पड़े। इस में दोष किसी का न था, अतएव जिसने गाली दी, उस ने पाप किया। ऐसे ही एक दूसरे अवसर पर देखा गया, कि टक्कर होते ही दोनों ने आपस में एक दूसरे से अपनी भूल

की क्षमा मांगी, और अपने २ मार्ग पर चल दिये, यह है सभ्यता और सुजनता का व्यवहार। ऐसी ही सभ्यता और सुजनता का व्यवहार ऐसे सारे अवसरों पर होना चाहिये, जहां असभ्य अपनी मूर्खता से आपस में लड़ पड़ते हैं।

पंचों और नव युवकों में यह बात बहुधा देखने में आई है, कि जब वे मिलकर चल रहे हों और आगे पीछे से कोई गाड़ी आजाए, तो जल्दी में यदि एक पुरुष एक ओर को हटा है, पर उस के साथी दूसरी ओर हटे हैं, तो वह फिर उसी समय अपने साथियों की ओर दौड़ता है। गाड़ी के निकल जाने तक धैर्य नहीं करता। यह बड़ी मूर्खता है, इस से कई बार कइयों को बड़ी हानि पहुंची है। एक बार कालेज का एक विद्यार्थी इसी तरह नीचे आकर मरा था। चलती ट्रेन के ठीक आगे से निकलने वाले तो कई बार ठोकर खाकर गिरे और मरे हैं। ऐसे अवसरों पर हर एक को समझ और धैर्य से काम लेना चाहिये, इतनी छोटी बातों पर जान की बाज़ी लगानी निपट

मूर्खता है। सब से बढ़ कर अविवेक और अधैर्य की बात आत्मघात है। एक बार एक नव युवक घर से लड़ कर आया, और आते ही उस ने कुएं में छाल लगादी। जब गोते खाने लगा, तो फिर बचने के लिए हाथ पाओं मारने लगा, इतने में उसे लोगों ने निकाल लिया। उस ने छाल अपने घरवालों को दुःख देने के लिए लगाई थी, पर जब गोते खाए, तो पता लगा, कि अब तो मैं ही दुनिया से चला। तब उसको अपनी महामूर्खता का ज्ञान हुआ, और तब बचने की चेष्टा करने लगा। इसी तरह के और भी महामूढ़ कभी न कभी सुनने में आजाते हैं, जो घर वालों से लड़ कर अफीम खा बैठते हैं, ट्रेन के नीचे सिर दे देते हैं, गले में फांसी लटका लेते हैं। यह उन के अत्यन्त अधैर्य और अतिमूढ़ता का लक्षण है। ये सर्वथा चरित्रहीन पुरुष महापापी हैं। पर कभी २ चरित्रवान् पुरुष भी किसी विपद् वा अपमान से बचने के लिए आत्मघात करलेते हैं। एक बार एक समझ दार और सुशाल विद्यार्थी परीक्षा में फेल होजाने

के कारण डूब मरा था। यह इसी लिये कि फेल होने का नाम सुनकर उसका विवेक और धैर्य जाता रहा। जिन का विवेक और धैर्य बना रहता है, वे विद्यार्थी कभी नहीं घबराते, यदि किसी कारणवश फेल ही हो जाएं, तो वे दुगने प्रयत्न से फिर लग जाते हैं, और उच्च कक्षा में पास होकर सारा धोना धो देते हैं। बहुत से ऐसे भद्र पुरुष देखे गए हैं, जो बड़े २ ऊंचे अधिकारों पर स्थित हैं, धन भी खूब कमाते हैं, और सार्वजनिक कार्यों में पूरा हिस्सा लेते हैं, इस से लोगों में उनकी प्रतिष्ठा भी खूब है। घर में भी स्त्री पुरुष सब आज्ञाकारी हैं। मानों उनका जीवन स्वर्गीय जीवन है। उन के विद्याऽध्ययन के विषय में जब बात चीत हुई, तो यह पता लगा, कि वे विद्यार्थी अवस्था में अपनी परीक्षाओं में कई बार फेल हो २ कर पास होते रहे हैं। और आश्चर्य यह, कि उन्हीं के वे साथी जो बराबर पास होते रहे, अब उन से हर बात में पीछे रह गए हैं। अब सोचो, क्या यदि ये फेल होकर आत्मघात कर लेते, तो यह प्रतिष्ठा

और सुख उनको प्राप्त हो सकता था, हां इस के पलटे अप्रतिष्ठा और नरक तो अवश्य मिल जाता। इसी तरह वे लोग जो अपने कारोबार में बहुत बड़ा घाटा देखकर आत्मघात कर लेते हैं, वे भी वैसे ही नरक के भागी हैं। विवेकी और धीर पुरुष फिर परिश्रम से लग कर कमा लेते हैं। एक बार एक व्यवसाय में दो पुरुषों का सारा सञ्चित धन जाता रहा। एक तो उसी दुःख में मरगया, दूसरे ने धैर्य अवलम्बन कर के कहा, ओह कुछ चिन्ता नहीं, जो भूल अब हुई है, इस से मुझे शिक्षा मिल गई है। अब मैं इस भूल से बचकर फिर वैसा ही कमालूंगा। और उसने वैसा ही कर दिखलाया। इसीतरह दूसरा भी यदि धैर्य और विवेक से काम लेता, तो क्यों अपने जीवन को भारी बोझ मानकर फैंक देता। अभी थोड़े दिनों की बात है, कि एक सुशील होनहार विद्यार्थी जो एम. ए. में पढ़ता था उसके माता पिता दोनों सख्त बीमार हो गए, घर में गरीबी थी। वह श्रद्धालु लड़का अपने इष्टमित्रों से उधार ले लिवा कर माता पिता की सेवा

करता रहा, एक दिन वह कुछ रुपयों के लिए इधर उधर बहुत भटका, जब कहीं से कुछ न मिला, सर्वथा निराश होगया, उसको यह अपना अपमान और माता पिता के दुःख असह्य हो उठे, और उस ने आत्मघात कर लिया। यह एक बड़ा करुणाजनक दृश्य है। तौ भी यह निःशंक कहा जासकता है, कि उस ने ऐसा कर के मरते माता पिता को मार ही दिया। यदि वह ऐसी विपद् में कोई काम कर के, कुली का भी काम कर के, माता पिता का दुःख हरण करता, तो वह जगत में एक उत्तम उदाहरण रख देता। इसी तरह बंगाल में माता पिता को दहेज़ के असह्य बोझ से बचाने के लिए कई कन्याओं ने आत्मघात किया। इन कन्याओं का भाव सर्वथा शुद्ध था, और उन्होंने बड़ा त्याग दिखलाया, पर विवेक पूर्ण काम यह भी नहीं कहा जासकता। यदि वे ऐसा आत्मत्याग न कर के आयु भर कुमारी रहने का व्रत धारण कर इस कड़े दहेज की कुप्रथा को दूर करने का यत्न करतीं, तथा स्त्री जाति का उद्धार करने में अपना जीवन

विता देतीं, तो उनका आत्मत्याग उन के और देश के लिए बड़े महत्त्व का होता। सर्वथा मनुष्य को दुःख और विपद् में धैर्य धारना चाहिये, और काम क्रोध आदि के वेग को विचार से रोकना चाहिये। जीवन में कभी निराश नहीं होना चाहिये। जिस विपद् में तुम घबराकर जीवन से निराश होते हो, विश्वास रक्खो, उस के पीछे २ सुख भागा चला आरहा है। धैर्य धारण करो, तो वह तुम्हें अवश्य आमिलेगा। सीता सतवन्ती को अपने पति का वियोग अत्यन्त असह्य था, और मिलने की आशा भी दुराशा थी, तौ भी उस ने अपने पति के मिलने के लिए जीवन को स्थिर रक्खा, और जब हनुमान् ने राम का संदेश जा सुनाया, तो उस के मुख से सहसा यह वचन निकला :—

पति जीवन्त मानन्दो नरं वर्ष शतादपि।

जीते हुए पुरुष के पास सौ वर्ष से पीछे भी आनन्द आपहुंचता है।

अविवेकी कभी न वनो, सदा समझ और धैर्य से काम लो, तो तुम से ऐसी कोई भूल नहीं होगी, जिस पर तुम्हें पछताना पड़े।

सांसारिक ज्ञान ।

इस जगत् में क्या हो रहा है, किस तरह लोग बढ़ते और घटते हैं, किस तरह धनवान् निर्धन, और निर्धन धनवान् बन जाते हैं। किस तरह यश और किस तरह अपयश कमाते हैं। और किस तरह धर्म अर्थ और यश तीनों को एक साथ कमाते हैं। कौन सुजन है, कौन धूर्त है, कौन महाशय है, कौन क्षुद्राशय है, कौन धर्मात्मा है, कौन धर्मध्वजी है, कौन विश्वसनीय है, कौन ठग है, इस प्रकार जगत् में जो कुछ हो रहा है, और लोगों की जैसी २ प्रकृतियां होती हैं, इसका जानना ही सांसारिक ज्ञान है। आंखें खोल कर संसार के व्यवहार देखने से यह ज्ञान प्राप्त होता है, और जितना यह ज्ञान अधिक और यथार्थ होता है, उतना ही पुरुष अपने अर्थ और परमार्थ के कामों में सफलता लाभ करता है। पुस्तकों के ज्ञान से भी यह ज्ञान अधिक लाभदायक होता है। हां पुस्तकों का ज्ञान इस के साथ मिल जाए, जो मिले हुए दोनों ज्ञान बड़े चमत्कार दिखलाते हैं। हर एक

संसारी पुरुष को मनुष्यों की प्रकृतियों और उन के काम निकालने के ढंगों का जानना आवश्यक है। सीधे सादे पुरुष बार २ ठगे जाने पर समय को कोसते रहते हैं। वह कहते हैं भले का समय नहीं रहा, जिस से भला करो, वही शत्रु हो जाता है। उनकी शिकायतें तो सच्ची होती हैं। पर वह अपनी इस त्रुटि को नहीं देखते, कि यह हमारे अपने अज्ञान का फल है। यद्यपि वह पुस्तक पढ़ कर विद्वान् होगए हों, पर उनको संसार का ज्ञान कुछ नहीं, अतएव वे धूर्तों की बातों में आकर हानि उठाते हैं। बहुतेरे ऐसे पुरुष होते हैं, जिन को १६, १७ वर्ष की आयु में जितना सांसारिक ज्ञान हो जाता है, उतना ही आयु भर चला जाता है। ऐसे ही पुरुष अपनी असफलताओं का दोष या लोगों के माथे लगाते हैं, या भाग्य को कोसते हैं, या समय की शिकायत करते हैं। सो तुम कभी ऐसे असावधान न रहो, सांसारिक ज्ञान में बराबर वृद्धि करते चलो। इस से तुम उन कामों से बचोगे, जिन से लोग गिरते हैं, निन्दास्पद होते हैं, और ठगे जाते

हैं, और उन कामों को पूरा कर सकोगे, जिन से लोग धन, और यश कमाते हैं, तथा अर्थ और परमार्थ को एक साथ साधते हैं ॥

आत्म विश्वास ।

"मैं इस काम को अवश्यमेव करलूंगा" यह आत्म-विश्वास अर्थात् अपने कामों में अपने ऊपर भरोसा सफलता का सब से बढ़िया साधन है। जिन में आत्म-विश्वास नहीं होता, वे काम करने में सदा झिजकते रहते हैं। डर के मारे किसी बड़े काम में हाथ नहीं डालते। और यदि कोई काम आरम्भ भी करें, तो डरते २ आरम्भ करते हैं, अतएव जब उस में कोई रुकावट आए, तो छोड़ बैठते हैं। ऐसे पुरुषों से कोई बड़े काम नहीं होसकते। उनका सारा जीवन साधारण कामों में ही बीत जाता है। असाधारण कामों को वे ही कर पाते हैं, जिन को अपने ऊपर पूरा भरोसा होता है। जहां वन में सीता हरी गई, वहां रावण का सामना करने के लिए रामचन्द्र के पास सेना न थी। और वनवास की अवधि पूरी हुए विना वे अयोध्या

के राज्य से सहायता न ले सकते थे, ऐसा करने से उन के त्याग में बट्टा लगता था। ऐसी अवस्था में जिस बल ने उनकी सहायता की, वह आत्मविश्वास था। उनको भरोसा था, कि मैं रावण को अवश्यमेव जीत लूंगा,, अतएव वे चुप नहीं बैठे, उठे, आगे बढ़े, और सुग्रीव से मैत्री जोड़ कर रावण पर जा आक्रमण किया। कुमारिलभट्टाचार्य और स्वामि शंकराचार्य ने जब वैदिक धर्म का पुनरुद्धार किया, तो उन के साथ न धनबल था, न बाहुबल था। हां उन के विरोधी तो सब प्रकार का बल रखते थे। तौ भी इन दोनों महा पुरुषों को अपने ऊपर पूरा भरोसा था, कि हम वेदों का उद्धार कर लेंगे, और उन्होंने कर दिखला या। इसी प्रकार श्री स्वामिदयानन्दसरस्वती ने लोगों के विरोध की परवाह न कर के अपने भरोसे पर वैदिक धर्म का झंडा खड़ा कर दिया, और उस के नीचे लोगों को बुलाया। और आर्यसमाज स्थापन कर दिये। महाराज रणजितसिंह छोटे ही थे, कि उन के पिता स्वर्गवास होगए। लोगों ने उन की कुछ भूमि दबा ली।

एक बार माता ने कहा, "बेटा तुम्हारे पिता की भूमि लोग दबाते जाते हैं"। बालक रणजितसिंह ने उत्तर दिया, "माताजी जब बड़ा हूंगा, तो अपनी चप्पा २ भूमि वापिस लूंगा" जैसा उनको अपने ऊपर भरोसा था, वैसा ही कर दिखाया। कई पुरुष ऐसे होते हैं, उनको जिस काम पर लगाओ, बड़ी अच्छी तरह पूरा करते हैं। कारण यह, कि उनको अपने ऊपर भरोसा होता है, कि मैं ऐसा कर सकूंगा। यह मुझ से न होगा, ऐसा कभी उन के मन में आता ही नहीं। वे जानते हैं, कि जो काम किसी से होसकता है, वह हम से भी होसकता है। निदान आत्मविश्वास की मात्रा जितनी जिस में अधिक हो, उतना ही बड़ा काम वह कर पाता है।

आत्म सम्मान और आत्मोद्धार।

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मान मवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपु रात्मानः ॥६॥
बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥७॥

(गीता अ० ६)

आप अपना उद्धार करे, अपने को फिसलने न दे, क्योंकि आप ही अपना बन्धु है, और आप ही अपना शत्रु है ॥५॥ जो अपने आप को अपने बस में रखता है, वह आप अपना बन्धु है, और जो अपने आप को अपने वस में नहीं रख सकता, वह स्वयं अपने लिए शत्रु बनता है ॥ ६ ॥

इस जगत में मनुष्य के सामने कई प्रकार के प्रलोभन आते हैं, जिन में वह अपने चरित्र से फिसल पड़ता है। किसी पुरुष ने तुम्हारे पास कुछ रुपया अमानत रक्खा है। उसको तुम्हारे ऊपर विश्वास है। इस लिए न किसी को साक्षी बनाया है, न कोई रसीद ली है। यह इस लिए, कि तुम्हारे ऊपर उस को विश्वास है। अब तुम्हारे सामने एक प्रलोभन आगया है, तुम उस से इन्कार कर दो, तो उस का कुछ नहीं बनेगा। पर तुम्हारे मन में यदि ऐसा ख्याल भी नहीं आया, और जैसा अन्दर प्रविष्ट होकर लिया है, वैसा ही अन्दर प्रविष्ट होकर उसे उसकी अमानत हवाले कर देते हो, तो तुम आप

अपना सम्मान करते हो। उस ने तो तुम्हारा पूरा सम्मान किया है, अब तुम भी अपना सम्मान करो, यदि आप अपना सम्मान न करोगे, तो फिर कोई तुम्हारा सम्मान न करेगा। फीरोज़पुर इस्लामिया हाई स्कूल के एक विद्यार्थी को सड़क पर एक पांच सौ रुपये का नोट मिला, वह उठाकर ले आया, पर आते ही हैडमास्टर साहेब के हाथ में दे दिया, कि इसका पता लगाकर असली मालिक को देदिया जाए। मालिक का पता लग गया, उसको दे दिया गया। मालिक ने उस लड़के को २५) रु० इनाम देना चाहा, लड़के ने यह कह कर इन्कार कर दिया, कि "यह रुपया मेरा नहीं था, मेरा इस में कोई स्वत्व नहीं। मेरे लिए जैसा वह ५००) बेगाना था, वैसा ही उस में के यह २५) भी बेगाने हैं। इन २५) के साथ वे ५००) पूरे होते हैं, अतएव उसी के हैं" यह है सच्चा आत्मसम्मान। इस प्रकार जो लोग आत्मसम्मान की रक्षा करते हैं। उन के आत्मा तेजस्वी होते हैं, वे आदर्श पुरुष होते हैं, जो अपने जीवन से लोगों

को धर्म का मार्ग दिखलाते रहते हैं।

आत्म सम्मान के तुल्य ही आत्मोद्धार की भी आवश्यकता है। तुम अपनी उन्नति के लिए दूसरों का भरोसा छोड़ दो। उत्साह और साहस के साथ अपने उद्धार में लगजाओ, फिर देखो, परमेश्वर तुम्हारी कैसी सहायता करते हैं, क्योंकि ईश्वर उनकी सहायता करता है, जो स्वयं अपने भरोसे पर काम करते हैं:—

अपने सहायक आप हो होगा सहायक प्रभु तभी।
बस चाहने से ही किसी को सुख नहीं मिलता कभी॥
(मैथिली शरण गुप्त)

तुम जब अपने कामों में आगे बढ़ने लगोगे, तो तुम्हारे सामने रुकावटें भी आएंगी, असफलता भी अपना मुख दिखलाएगी। पर यदि तुम अपना पग पीछे न हटाओगे, अपने उद्धार के प्रयत्न में लगे रहोगे, तो अन्ततः सारी रुकावटें हट जाएंगी और सफलता आकर तुम्हारे चरण चूमेगी। अतएव मनु महाराज कहते हैं:—

नात्मान मवमन्येत पूर्वा भिरसमृद्धिभिः।
आमृत्योः श्रियमन्विच्छेन्नैनां मन्येतदुर्लभाम् (मनु४।१३७)

पहली असफलताओं से अपना अपमान न कर (अर्थात् प्रयत्न को निष्फल देख कर अपने आप को मन्दभाग्य न समझ बैठे) बल्कि अन्तिम श्वास तक समृद्धि के लिए यत्न करे, इसको कभी दुर्लभ न समझे॥

बहुत से पुरुष विपद् में पड़ कर नष्ट होजाते हैं, वा मानवसमाज में जिस छोटी श्रेणि में उत्पन्न होते हैं, उसी श्रेणि में अपनी सारी आयु बिता देते हैं। पर जो पुरुष दीन हीन अवस्था में रहना नहीं चाहता, अपना उद्धार आप करना चाहता है, और उद्धार करना जानता है, वह कभी उस अवस्था में पड़ा नहीं रह सकता, वह विपद् को काट कर सम्पदा में आता है, और छोटी श्रेणि से ऊपर उठ कर ऊंची श्रेणि में पहुंच जाता है। इस के उदाहरण प्रति दिन हमारे सामने आते रहते हैं। इस अटल नियम को एक कवि ने कैसी सुन्दर उपमा से वर्णन किया है—

यात्य धोऽधो व्रजत्युच्चैर्नरः स्वैरेव कर्मभिः।
कूपस्य खनकः यद्वत् प्राकारस्य च कारकः॥

मनुष्य अपने ही कर्मों से नीचे २ को जाता है,

वा ऊपर २ को चढ़ता है, जैसा कि कूँएं का खोदने वाला और कोट का बनाने वाला (पहला अपने ही कर्म से नीचे २ जाता है, दूसरा ऊपर २ चढ़ता है)

कमाई ।

हर एक मनुष्य को अपनी कमाई खानी चाहिये। हिन्दुओं में जो सवेरे उठ कर दायां हाथ देखने का प्रचार है, यह इस बात का चिन्ह है, कि हर एक पुरुष अपने सामने यह ध्यान लेआवें, कि मैं अपनी कमाई खाउंगा, और अपनी कमाई में से दान दूंगा। दायां हाथ कमाई का और दान का चिन्ह है। अपनी कमाई में से खाना और कमाई में से दान देना यह उच्चभाव जिस देश वा जिस जाति के मनुष्यों में आजाता है, उस देश और उस जाति की दिनों दिन श्रीवृद्धि होने लगती है।

हमारे पूर्वज मुफ्तखोरी को पाप जानते थे; जैसा कि मनु महाराज लिखते हैं :—

> उपासते ये गृहस्थाः परपाकमबुद्धयः।
> तेन ते प्रेत्य पशुतां व्रजन्त्यन्नादि दायिनाम् ॥

जो मूढ गृहस्थ पराया अन्न खाते हैं, वे मरकर उन अन्न देने वालों के पशु बनते हैं ॥

ब्राह्मण जो उस समय दान के पात्र समझे गए थे, यह मुफ्तखोरी न थी, वे मुफ्त विद्यादान देते थे, और धर्म का प्रचार करते थे। वे इस के पलटे में बहुत थोड़ा लेते थे, जितना कि देते थे। जब तक कोई विद्यार्थी उन के पास पढ़ता था, वह उस से कुछ नहीं लेते थे। लेकर पढ़ाना और देकर पढ़ना इन दोनों को वह पाप मानते थे, अतएव विद्या दान देने में धनी निर्धन सब उन के लिये एकसमान थे, वे सब को एक जैसा विद्या दान देते थे। निदान पूर्ण योग्यता प्राप्त कर के लोगों के सुधार में लग जाने वाले और लौकिक ऐश्वर्य की तनिक परवाह न करके सादा जीवन बिताने वाले उन ब्राह्मणों के लिए मुफ्तखोरी का शब्द कौन कह सकता है। उलटा लोग उन के उपकार मानते थे। यह स्वार्थ त्याग था, न कि मुफ्तखोरी। जितने जिस देश वा जाति में मुफ्तखोर होते हैं, उतना ही वह देश वा जाति घाटे में रहते हैं। इस समय हमारे

देश हमारी जाति में बहुत लोग दान वा भिक्षा पर निर्वाह करते हैं। भारतवर्ष में भिखमंगों की संख्या ५२ लाख है। जो एक पैसा नहीं कमाते, भीख मांग २ कर सारे खर्च चलाते हैं। ऐसे पुरुषों पर यदि ४) प्रति पुरुष का मासिक खर्च माना जाए, तो एक वर्ष में २४ करोड़ ९६ लाख रुपया भारत वासियों का इन भिखमंगों के भरण पोषण में लग जाता है। यदि यही रुपया प्रति वर्ष कृषिविद्या, शिल्पविद्या और व्यापार आदि की उन्नति के लिए खर्च किया जाए, तो २५ ही वर्षों में देश का बेड़ा पार होसकता है। भारत धन के कमाने में दूसरे देशों से पीछे क्यों हैं, यहां अकाल क्यों बार २ पड़ते हैं, इस लिए कि यहां लोगों को भीख मांगने में लज्जा नहीं आती। इस भिक्षावृत्ति को सर्वथा निन्दनीय समझना चाहिये। परमेश्वर की दी बुद्धि और हाथ पाओं के होते हुए जो पुरुष अपने खाने पीने के लिए पराये मुख को ताकता है, उस पर परमेश्वर की फिटकार है। उस का आत्मा दुर्बल होजाता है, और उस के सारे भाव

क्षुद्र होजाते हैं। इस लिए वे न केवल देश के धन का नाश करके देश में दारिद्र्य लाने के ही हेतु बनते हैं, किन्तु वे देश में क्षुद्र भावों का संचार भी करते हैं। इस लिए देश और जाति का कल्याण चाहने वालों को चाहिए, कि वे ऐसे उपाये बर्तें, जिन से देश में भीखमांगने वाला कोई न रहे। और भीखमांगने में लोगों को लज्जा प्रतीत हो। हां जिन पर कोई विपत्ति आपड़े, उन की सहायता करना सम्पत्ति वालों का अवश्य कर्तव्य है। और यह उन के मन का उच्च-भाव है। पर काम करने वालों को मुफ्तखोरी की ओर किसी भी ढंग से उत्साहित करना पाप है। जिन लोगों के पास अपने बाप दादा का कमाया धन बे हिसाब पड़ा है, वे लोग यदि उसे ही बैठकर खाते हैं, तो पापी हैं। क्योंकि कोई भी पुरुष जो अपनी कमाई नहीं खाता, वह परमेश्वर की दी शक्तियों का अनादर करता है, अतएव वह पापी है। अमीर गरीब जो कोई हो, सब को अपनी कमाई कर के ही खाना चाहिये। अपना जीवन अपने ही भरोसे पर धारणा चाहिए।

जीविका कोई भी हो; सभी श्लाघनीय हैं। खेती करना, व्यापार करना, दुकानदारी, शिल्पकारी नौकरी, मज़दूरी आदि सारी जीविकाएं पवित्र हैं कोई भी जीविका हो, ईमानदारी के साथ करो, और किसी प्रकार की भी जीविका में लज्जा न मानो, लज्जित तो उनको होना चाहिए, जो ईमानदारी से जीविका नहीं करते। क्या कपड़े बुनने में कबीर की महिमा घट गई? जूते सीने में रविदास की महिमा घट गई? वा अपने हाथों से खेती करने में जल्हन जाट की महिमा कम हो गई? महिमा पुरुष की उस के चरित्र के आधार पर टिकती है। सो किसी भी काम को क्षुद्र न समझो, जो कर सकते हो, करो। हां यह तुम्हारे लिए और भी गौरव की बात होगी, कि तुम छोटे २ पेशों से उन्नति करते २ बड़े २ कारखानों के मालिक बनो।

तुम जानते हो, कि चोरी, डकैती और ठगी पाप की जीविकाएं हैं, चोर, डकैत, और ठग ईश्वर के भी अपराधी हैं, और राजा से भी दण्डनीय होते हैं।

और यह भी जानते हो, कि चोरी का माल खरीदने वाला भी पापी और दण्डनीय होता है, अतएव ऐसी पाप की कमाई कमाने वालों के साथ तुम लेन देन का व्यवहार रखना भी पसन्द नहीं करते। पर साथ ही इस बात से भी सावधान रहो, कि किसी अनजान से अधिक मूल्य लेना भी ठगी ही है। यह भी पाप ही है, अपनी कमाई में इस तरह की एक कौड़ी भी कभी न मिलने दो, तभी तुम्हारी कमाई शुद्ध रहेगी।

शुद्ध जीविकाओं में नौकरी एक छोटे दर्जे की जीविका है, क्योंकि इस में पराधीन होना पड़ता है। और यह सीधी बात है, कि परतन्त्रता में स्वतन्त्रता का सुख नहीं मिल सकता। तथापि जो नौकर हैं, उन को चाहिए, कि अपना काम ऐसे परिश्रम, उद्योग और सावधानता से करें, कि काम बहुत अच्छा हो, जो आशा मालिक उनसे रखता है, उसको पूरा करें, बल्कि आशा से बढ़कर फल पहुंचाएं। अपनी योग्यता को बराबर बढ़ाते रहें। जो उनका अपना प्रति दिन का कर्तव्य है, वह तो उन के हस्तामलकवत हो ही, किन्तु योग्यता

उस से भी बहुत ऊंची रक्खें। तब वे निःसंदेह अपने मासिक और पद में उन्नति करते जाएंगे। जो लोग अपनी योग्यता नहीं बढ़ाते, उनको अपनी वृद्धि की भी आशा नहीं रखनी चाहिए। एक बार एक अफसर ने अपने अधीनों को उपदेश दिया था कि 'मैंने बहुधा देखा है, कि लोग वृद्धि की इच्छा तो रखते हैं, उस के लिए अभ्यर्थना भी करते हैं, पर अपनी योग्यता बढ़ाने की चेष्टा नहीं करते। तुम अपनी योग्यता बढ़ाने की चेष्टा करो, तो तुम्हारी न केवल मासिक वृद्धि ही होगी, बल्कि नीचे से ऊंचे भी चढ़ते जाओगे। मैं पसन्द करता हूं, कि जब कोई ऊंचा पद खाली हो, तो उस से नीचे काम करने वालों को क्रमशः वृद्धि देकर सब से निचले पद पर नया आदमी रक्खा जाए। ऐसे योग आते रहते हैं। पर यदि तुम अपनी योग्यता न बढ़ाओगे, तो अगत्या ऊंचा पद ही नए आदमी को देना पड़ेगा। सो तुम अपनी योग्यता बढ़ाओ, ताकि ऐसे सुयोगों से लाभ उठासको" इस उपदेश में साधारण मनुष्यों की प्रकृति

का चित्र बड़ा सुन्दर खींचा गया है। साधारण मनुष्य जब तक पढ़ते हैं, तब तक तो वह अपनी योग्यता बढ़ाते हैं। जब काम पर लगें, तो फिर यह समझ लेते हैं, कि अब हमने जो कुछ बनना था, बनगए। अतएव वह आयु भर एक ही दर्जे पर टिके रहते हैं। जब कि दूसरी ओर वे लोग जो काम में पड़ कर योग्यता प्राप्त करने में उसी प्रकार बढ़ते जाते हैं, जिस प्रकार स्कूल में एक विद्यार्थी विद्या में बढ़ता है। वे पुरुष हैं, जो बहुत ही छोटे पदों से उठ कर भी बड़े २ ऊंचे पदों पर पहुंच जाते हैं। निदान नौकरी का रहस्य यह है, कि काम को अपना समझ कर मन लगा कर करो, अपने काम से अपने स्वामी को प्रसन्न रक्खो, अपनी योग्यता बढ़ाते रहो, और हर बात में ईमानदारी रक्खो।

पर यह याद रखना चाहिए, कि नौकरी से व्यापार का दर्जा बहुत ऊंचा है। नौकरी में परतन्त्रता है, व्यापार में स्वतन्त्रता है। व्यापार को जितना चाहो, बढ़ा लो, नौकरी में यह बात नहीं। उस में तुम

गिनी मिनी ही उन्नति कर सकते हो। बहुत से ऐसे लोग हैं, जिन्होंने नौकरी छोड़ कर व्यापार कर के थोड़े ही वर्षों में इतना रुपया कमा लिया है, कि यदि वे नौकरी करते रहते, तो सारी आयु में भी उसका सवा हिस्सा भी न कमा सकते। अर्थशास्त्र का उपदेश भी यही है 'वाणिज्येवसति लक्ष्मीः' लक्ष्मी का वास व्यापार में है। हमारे देश में व्यापार की मन्द अवस्था इस लिए है, कि पढ़े लिखे लोगों का ध्यान केवल नौकरी की ओर ही जाता है। कल कारखाने खोलने और व्यापार करने की ओर नहीं। इस से देश में दरिद्रता है। इस युग में वही देश दरिद्रता से बच सकता है, जिस देश में नवयुवक पढ़ लिख कर, पूरे योग्य बन कर, नए २ आविष्कारों से कल कारखानों से और व्यापार से देश का धन बढ़ाएं।

दुकानदारों और व्यापारियों की उन्नति के रहस्य ये हैं। अपने काम में पूरे दत्तचित्त होकर लगें। खूब सोच विचार कर इस बात का निश्चय कर लें, कि इस ढंग पर चलने से मेरा व्यापार बहुत जल्दी

बढ़ेगा, और फिर अपने निश्चय के अनुसार पूरा परिश्रम और उद्योग करें। काम में जो रुकावटें आती हैं, और जो भूलें होजाती हैं, उन से शिक्षा लेकर आगे को उन से बचने का उपाय सोच लें। जिन के साथ लेन देन का व्यवहार है, उन के स्वभाव और वर्ताव का ज्ञान प्राप्त करें, ऐसे सावधान होकर चलें, कि किसी की मोहिनी बातों, वा बाहरी भड़क वा दिखलावेंमात्र के शुद्ध व्यवहार से धोखा न खा जाएं। स्वयं सदा हर बात में ईमानदार रहें। इस नियम को अटल जानें, कि अपना धर्मभाव (ईमानदारी) स्थिर रखने में चाहे कितनी ही हानि हो, वह अन्ततः बहुत बड़े लाभ का हेतु भी बन जाती है। और धर्मभाव खोकर उस समय चाहे कितना ही लाभ हो, वह अन्ततः बहुत बड़ी हानि का हेतु बन जाता है। एक बार जिस को धोखा दोगे, वह फिर कभी तुम्हारा गाहक नहीं बनेगा, इतना ही नहीं, वह अपने जान पहचान वालों को भी तुम्हारा गाहक बनने से रोकेगा। और यदि तुम अपने गाहक के साथ मुंह से तो मधुर

भाषण करते हो और व्यवहार ऐसा सच्चा करते हो, कि उस से बढ़ कर सच्चे व्यवहार की उसको आशा हो ही नहीं सकती, तो वह सर्वथा अपरिचित गाहक भी एक ही बार में तुम्हारा परिचित बन जाएगा, वह सदा के लिए तुम्हारा गाहक होजाएगा, और अपने जान पहचान वालों को तुम्हारे ही पास लाएगा और तुम्हारी ही ओर प्रेरेगा। इस लिए व्यवहार सदा सुच्चा रक्खो, और अपने गाहकों के साथ ऐसा बर्तो, कि वे तुम्हारे बस में हो जाएं। शुद्ध व्यवहार से उन को अपनी ओर खींचो, मधुर भाषण से उन को अपनी ओर खींचो, और हृदय के प्रेम से उन को अपनी ओर खींचो। जिस से तुम्हें लाभ होना है, वह तुम्हारे प्रेम का पात्र अवश्यमेव है। काम की सूची तय्यार करो, और उस के अनुसार सारे काम करो। जितना लाभ तुम्हें होता है, उतने में संतुष्ट न हो रहो, अपना लक्ष्य ऊंचा ही ऊंचा रक्खो, और उस पर पहुंचने की चेष्टा करो। और अपने ऊपर भरोसा रक्खो, कि मैं इस काम को पूरा करलूंगा। यदि तुम्हें

अपने ऊपर पूरा भरोसा है, तो निश्चय जानो, कि तुम अपने लक्ष्य पर अवश्यमेव पहुंच जाओगे। यदि मार्ग में विघ्न बाधाएं आएं, तो उनको पाददलित कर के आगे बढ़ो, जो बार २ विघ्नों से प्रतिहत होकर भी साहस नहीं छोड़ते, वही अपने लक्ष्य को पाते हैं, और उन्हीं का आत्मबल भी सर्वोपरि होजाता है। इस प्रकार व्यापार में जो पुरुष उच्च आदर्श को सामने रख कर व्यापार करता है। वह अपने चरित्र बल से धर्म और व्यापार बल से अर्थ को कमा कर लोक परलोक दोनों को सुधार लेता है। संसार में रह कर व्यवहारियों के सामने शुद्ध व्यवहार का उदाहरण स्थिर करने वाला पुरुष वनों में रहने वाले तपस्वियों से भी धर्म स्थापन में बढ़ कर रहता है।

हमारे देश में खेती की जीविका भी बहुत बड़ी है, और इसको उत्तम जीविका माना है। पर इस काम के करने वाले अपढ़ लोग ही हैं। कहीं कोई विरला ही पढ़ा लिखा पुरुष इस जीविका में प्रवृत्त होगा। इस जीविका को सब ने एक क्षुद्र जीविका समझ रक्खा है। यह बड़ी भूल

है। योरुप और अमेरिका में जैसे वैज्ञानिक रीति पर खेती होती है। इस प्रकार वैज्ञानिक रीति पर यदि हमारे देशी विद्वान् खेती का काम करें, तो वह खेती के काम से बहुत लाभ उठा सकते हैं। स्वास्थ्य तो उनका नौकरी की अपेक्षा बहुत अच्छा रहे ही, गाओं के लोगों में उनका आदर भी बहुत हो, उन में शिक्षा और सभ्यता का संचार भी अधिक करसकें, और इस काम को भी आदरणीय बना दें। खेती की जीविका बड़ी शुद्ध जीविका है, क्योंकि हर एक मनुष्य की जीवन-स्थिति खेती की उपज के सहारे है। यदि लोग धर्मात्मा बन जाएं, किसी का स्वत्व छीनें नहीं, अपने २ स्वत्वों पर टिके रहें, और शरीर को ऐसा तकड़ा रक्खें, कि कभी बीमार न हों, तो कई सद्कर्मों और पेशों की समाप्ति होजाए। पर खेती के काम की और भी वृद्धि हो।

निदान मनुष्यसमाज को जिन २ बातों की आवश्यकता है, उन में से किसी को पूरा करके जो भी कमाई की जाती है, वह सब शुद्ध है, किन्तु नेक

कमाई होनी चाहिए। और हर एक को उतना अवश्य कमाना चाहिए, जिस से वह अपनी सारी ज़िम्मेदारियों को, जो उसकी अपने बड़ों की ओर, स्त्री की ओर, सन्तान की ओर, बन्धु बान्धवों की ओर, इष्ट मित्रों की ओर, और देश तथा जाति की ओर हैं, पूरा करसके॥

धन का उपयोग।

धन लोगों के सुख और प्रतिष्ठा का हेतु है, पर कई लोगों के लिए दुःख और अप्रतिष्ठा का हेतु भी होजाता है। इसका कारण यह है, कि जो धन रखते हुए भी धन का वर्तना नहीं जानते, वे धन से सुख लाभ नहीं कर सकते। धन एक शक्ति है, जिस से मनुष्य अपनी आयु को ऊंचा और चरित्र को ऊंचा बना सकता है। क्योंकि धनी पुरुष आहार विहार रहन सहन सब कुछ अच्छा रख सकता है, और परोपकार के काम करने का भी सामर्थ्य रखता है। किन्तु कई धनी ऐसे कृपण होते हैं, कि धन का संचय करना ही अपने जीवन का लक्ष्य बना लेते हैं। बड़ी भोर उठते हैं, भागा भागी में ही शौच स्नान का

और भागाभागी में ही रोटी का टंटा निपटाते हैं। दिन भर कमाते हैं। और बड़ी रात तक रोकड़ मिलाते रहते हैं। कमाते खूब हैं, पर निरा छोड़ जाने के लिए। धर्मखाता तो इन के यहां होता ही नहीं। किन्तु खाने पीने और पहनने में भी वही कृपणता दिखलाते हैं। खराब से खराब वस्तु क्यों न हो, पर जो सस्ती से सस्ती है, वही इन को अपने और अपने परिवार के खाने पीने पहनने के लिए पसन्द आती है। मैले वस्त्र हों, तो धुलाते नहीं, फटे पुराने हों, तो छोड़ते नहीं। घर की और घर के सामान की तो और भी बुरी दशा रहती है। सन्तान की शिक्षा में भी पूरा खर्च नहीं करते। बस प्रतिदिन अपनी जमा में वृद्धि देखकर ही प्रसन्न होते हैं। ऐसे पुरुष लखपति होगए, तो क्या, करोड़पति होगए, तो क्या। करोड़ों के होते हुए भी वे धनहीन के बराबर हैं। इसी लिए नीति में कहा है :—

दानोपभोगहीनेन धनेन धनिनो यदि।
भवामः किं न तेनैव धनेन धनिनो वयम्॥

दान और उपभोग से हीन धन से वे यदि धन के स्वामी कहे जासकते हैं, तो फिर उसी धन से हम भी धन के स्वामी क्यों नहीं? (स्वामी होने का इतना ही तो भेद है, कि स्वामी ही उसको वर्तता है, दूसा नहीं। पर कृपण तो वर्तता है नहीं। सो न वर्तने वाला स्वामी जैसा वह है, वैसे ही दूसरे भी हैं)।

कृपण एक धन कमाने की मशीन है। जैसे मशीन किसी के लिए सारा दिन काम करती है, वैसे वह भी किसी के लिए मरता रहता है। अतएव कहा है—

निज सौख्यं निरुन्धानो यो धनार्जनं मिच्छति।
परार्थं भार वाहीव क्लेशस्यैव भाजनम्॥

अपने सुख को रोक कर जो धन कमाता है, वह दूसरे के लिए बोझ ढोने वाले (पशु) के तुल्य क्लेश का ही भागी है। ऐसे कृपण पुरुष जो जोड़ २ कर मर जाते हैं, उनकी सन्तति ऐसी नीच होती है, कि जब वह धन उन के पास आता है, तो दिनों में ही उड़ा देते हैं। इस लिए धन का पहला उपयोग यह है, कि उस धन से अपने को और अपने परिवार

को सुखी रक्खे। अपनी सन्तान को सुशिक्षित बनाने के लिए योग्य खर्च से कभी न झिझके। अपनी सन्तान को अयोग्य रख कर उन के हाथ में धन देने की अपेक्षा, उनको योग्य बनाने पर खर्च कर देना श्रेष्ठ है।

कृपणता के प्रतियोग में दूसरी ओर अति व्यय है। जो पुरुष अपनी सारी कमाई साथ ही साथ खर्च कर देते हैं, या कमाई से अधिक खर्च कर देते हैं। वे भी सुखी नहीं रह सकते। अपव्यय से सर्वथा बचना चाहिए। जो थोड़ी आमदनी वाले हो कर अमीरों का सा ठाठ बाठ रखते हैं। जब चलते हैं, तो पीछे नौकर चलता है। गाड़ी घोड़े का सामर्थ्य न रख कर भी गाड़ी घोड़े और साईस का खर्च बढ़ा लेते हैं। वे जल्दी ही दीवालिए होजाते हैं, और प्रतिष्ठा के स्थान अप्रतिष्ठा लाभ करते हैं। अनजान व्यापारी भी इसी तरह के दिखलावे में जल्दी अपना सर्वस्व खोकर नंग होजाते हैं। गम्भीरता तो यह है, कि अमीर होकर भी, अपव्यय का सामर्थ्य रख कर भी अपव्ययी न बनो। अपव्यय से बचा कर यदि दीन

दुःखियों की सहायता में अधिक खर्च करो, तो तुम्हारा यश अधिक बढ़ेगा, और मन भी अधिक प्रसन्न होगा। सर्वथा मनुष्य को न कृपण बनना चाहिए, न अपव्ययी। अपनी सारी आमदनी खर्च न कर डाले, उस में से अवश्य कुछ संचय करे, ताकि जब कभी जीविका जाती रहे, वा मन्द होजाए, वा स्वयं वा अपने परिवार में से कोई बीमार होजाए, तो धन के अभाव से दुःखित न हो। ऐसे पुरुष भी देखे गए हैं, जो बहुत कमाते थे, पर जब बीमार हुए, तो पूरा इलाज नहीं कर सके, इस लिए, कि बचाते कुछ नहीं थे। जिस की १००) मासिक आमदनी है, यदि वह सारी खर्च कर डाले, और १०) वाला एक रुपया मासिक बचाता रहे, तो तुम देखोगे, कि किसी विपत्ति के आपड़ने पर १०) वाला उस विपत्ति को काट लेगा। और १००) वाला उस में या पार बोलजाएगा, या दूसरों के तरस पर जीवन निर्वाह करेगा। विपत्ति तो विपत्ति ही है। पर बिना विपत्ति के भी यदि १००) की आमदनी वाला प्रति मास १००–) खर्च

कर दिया करे। तो इतने में भी दुःखी रहेगा, क्योंकि जो एक आना पहले महीने सिर चढ़ गया है, वह दूसरे महीने उतरेगा नहीं, दो होजाएगा। पर वही यदि ९९॥|≡) प्रति मास खर्च करे, तो सुखी रहेगा। ज़ाहिरा तो यह कहा जासकता है, कि जहां एक आना कम सौ रुपया खर्च है, वहां एक आना ऊपर सौ रुपया होगया, तो कौनसा बड़ा फर्क पड़गया। पर यह फर्क १००) की आमदनी वाले के लिए तो इतना बड़ा है, कि एक में वह ऋणी होता जाएगा और दूसरे में कुछ न कुछ उस के हाथ होता जाएगा। इस लिए यदि पुरुष अधिक न बचा सके, तो न्यून से न्यून अपनी आमदनी का दसवां हिस्सा अवश्य बचत में डाले।

उधार और ऋण।

अपनी आवश्यक वस्तुएं नकद दाम पर खरीदो। उधार कभी न लो। नकद देकर खरीदने का नियम रक्खोगे, तो एक तो कभी कोई अनावश्यक वस्तु न खरीदोगे। दूसरा सौदे में कुछ रिआयत पाओगे, वा

जहां से तुम्हें रिआयत मिलेगी, वहां से लोगे। जब दाम नक़द देने हैं, तो फिर लिहाज़ किस बात का, जहां से रिआयत मिली, वहीं से खरीद की। दुकानदार भी तुम्हारा आदर अधिक करेंगे, और सभी अपनी २ ओर बुलाएंगे और खरीद लेने के पीछे तुम्हारे सिर पर न कोई बोझ रहेगा, न कोई तुम्हें पूछेगा। उधार में यह गुण नहीं रहते। उधार लेने का स्वभाव होजाय, तो जब कोई अनावश्यक वस्तु भी पसन्द आगई, तो पुरुष उसे खरीद लेता है, और फिर दाम देने ही पड़ते हैं। उधार में कुछ कसर भी खानी पड़ती है। और गाहक को वह कसर सहनी पड़ती है, क्योंकि दाम हाथ में न होने के कारण वह उसी एक दुकान से लेने पर बाध्य होता है। खरीदनें के पीछे उसको चुकाने का ध्यान बना रहता है, और देर हो, तो दुकानदार भी पूछता है। इस लिए उधार खरीदने का स्वभाव कभी न डालना चाहिए। जो अपने मासिक के भरोसे पर महीना भर उधार लेते रहते हैं, वह अपना सारा मासिक पिछले बिल्लों के

चुकाने में ही समाप्त कर देते हैं और आगे फिर अगले मासिक के भरोसे उधार लेना आरम्भ कर देते हैं। यदि वे तीन चार महीने संकोच कर के अपने हाथ में कुछ रुपया कर लें, और उधार से बचें, तो हर महीने उन के पास बचत होती रहे।

ऋण से तो सर्वथा ही बचना चाहिए। यह उधार से भी बढ़ कर हानिकारक है। उचित तो यह है, कि ऋण व्यापार के लिए भी न लिया जाए। व्यापारी को चाहिए, कि अपनी थोड़ी पूंजी बनाए। यदि इस प्रकार वह धीरे २ बढ़ेगा, तो उसकी योग्यता और आत्मबल इतने बढ़ेंगे, कि फिर थोड़े समय में बहुत बड़ा धनी बन जाएगा। तथापि अनुभवी व्यापारी यदि व्यापार के लिए ऋण ले, तो वह उस से लाभ ही उठाएगा। पर बिना अनुभव के जो पहले ही ऋण लेकर व्यापार आरम्भ करेगा, वह बहुत धोखा खाएगा। क्योंकि बिना अनुभव के निरा रुपया लाभ नहीं देगा, और व्याज देना ही पड़ेगा, इस से लाभ के स्थान हानि में रहेगा और यदि काम में भी

घाटा ही पड़ा, तो ब्याज और घाटा दोनों मिल कर दिवाला ही निकलवादेंगे। यह तो है व्यापारिक ऋण की बात। किन्तु घर के खर्चों और विवाह ढंगों के लिए तो कभी भी ऋण नहीं उठाना चाहिए। क्योंकि आगे तुम ने घर के खर्च भी बन्द नहीं कर देने। उधर ऋण का रुपया भी दिन रात सूता जाएगा। घर के खर्च चलाओगे, या ऋण का रुपया चुकाओगे। बहुत मारोमार कर के यदि खर्च चला कर ऋण का ब्याज भी देते गए, तो भी तुम्हारा छुटकारा कभी नहीं होगा। बहुत लोग ऐसे देखने में आए हैं, जिन्हों ने ऋण लेकर विवाह में गहने बनवाए, और फिर वे सारे के सारे गहने ब्याज में ही चले गए, और उनका ऋण वैसा ही सिर पर खड़ा रहा। अतएव ऋणग्रस्त पुरुष सदा चिन्ताग्रस्त रहता है। साहूकार के सामने वह भयभीत रहता है। उस के सामने उसे झूठे बहाने भी बनाने पड़ते हैं। ये सारी गिरावटें ऋण के साथ आ उपस्थित होती हैं। 'कौन जगत में सुखी रहता है' इस प्रश्न के उत्तर में युधीष्ठिर ने क्या सत्य कहा है—

दिवसस्याष्टमे भागे शाकं पचति यो गृहे ।
अनृणी चाप्रवासी च स वारिचर मोदते ॥

अपने घर में जो दिन के आठवें भाग में (अर्थात् सांझ को) निरा साग ही पका लेता है, पर ऋणी नहीं और घर के लोगों से बिछड़ा नहीं वह सुखी है॥

ऋण लेना तो चिन्ता और हानि का मूल है ही, पर ऋण देना भी हर एक का काम नहीं। ऋण देने में लोग बहुत धोखा खाते हैं, और ब्याज के लोभ में अपना इकट्ठा किया धन भी खो बैठते हैं। जो साहूकार का काम करते हैं, वे तो पहले, बड़ी सावधानी के साथ इन बातों की पुन छान कर लेते हैं, कि इस की जायदाद कितनी है, इस का व्यवहार लोगों से कैसा है, रुपया किस काम के लिए लेता है, इस ने किसी दूसरे का कुछ देना तो नहीं, इत्यादि बहुत आवश्यक बातों को जान कर भी पहले पहल उस पर बहुत विश्वास नहीं करते, ज्यों २ व्यवहार का सच्चा निकलता है, त्यों २ विश्वास करते हैं, और ब्याज को कभी किसी की ओर अधिक बढने नहीं

देते, साथ २ लेते रहते हैं, तब वे इस व्यवहार में लाभ उठाते हैं। तौ भी कहीं न कहीं धोखा भी खा ही जाते हैं। पर जो व्यवहार में ऐसे पक्के नहीं होते, वे तो धोखे ही धोखे में सारा धन खो बैठते हैं। इस लिए यदि तुम इस व्यवहार में पक्के नहीं हो, तो ब्याज के अधिक प्रलोभन में न पड़ो, बैंकों का जो थोड़ा ब्याज है, उसी को बहुत समझो, अच्छे बैंकों में रखने से तुम्हें कभी कोई चिन्ता नहीं व्यापेगी, और थोड़ा ब्याज भी प्रतिवर्ष मूल के साथ मिल २ कर चक्र-वृद्धि के क्रम से बहुत अधिक होजाएगा। और यदि स्वयं ब्याजी देना चाहते हो, तो पुरुष को व्यवहार से परखो, उसकी मीठी २ बातों में न आजाओ। क्योंकि

झूठा मीठे वचन कहि ऋण उधार लै जाय।
लेत परम सुख ऊपजे लैके दियो न जाय॥
लैके दियो न जाय ऊंच अरु नीच बतावे।
ऋण उधार की रीति मांगतें मारण धावे॥
कहै गिरिधर कविराय रहै जनि-मन में रूठा।
बहुत दिनां ह्वै जाय कहै तेरो कागद झूठा॥

बेईमान तो बेईमान ही है, पर जो ईमानदार हैं,

ऋण के नीचे दब कर वह भी बेईमान हो जाते हैं। इसी लिए नीति में कहा है :—

आपत्सु मित्रं जानीयाद् युद्धे वीरं ऋणेशुचिम् ।

मित्र को अपनी विपदा में परखे, युद्ध में वीर को और ऋण में ईमानदार को।

दान।

कमाई सफल उसी समय होती है, जब उस में से कुछ दान दिया जाता है। इस लिए अपनी कमाई का कुछ हिस्सा दान के लिए अलग रख देना चाहिए। ऐसा करने से तुम्हारे दान खाते में रुपया सञ्चित होने लगेगा, और जब किसी शुभकार्य में तुम्हें दान देने की आवश्यकता होगी, तो तुम उस में से निः-संकोच दे सकोगे। दूसरा तुम्हारी सारी आमदनी में से जब धर्मार्थ कुछ निकलता रहेगा, तो शेष सारी आमदनी तुम्हारी अधिक पवित्र होगी। क्योंकि उस सारी आमदनी में से एक भाग ईश्वरप्रीत्यर्थ निकाला गया है। वह हिस्सा कितना होना चाहिए। इसका उत्तर एक बड़े उदारहृदय मुनि ने तो यह दिया है—

धर्माय यशसेऽर्थाय आत्मने स्वजनाय च।
पञ्चधा विभजन् वित्त मिहामुत्र च मोदते॥

धर्म के लिए, यश के लिए, धन के लिए, अपने लिए और अपने जनों के लिए इसप्रकार अपने धन को पांच विभागों में विभक्त करने वाला इस लोक और परलोक दोनों में आनन्द मनाता है॥ अर्थात् अपनी कमाई के पांच भाग कर के एक भाग धर्म के लिए रखना चाहिए, दूसरा यश के लिए। धर्म से यश का भेद इस लिए किया है, कि जगत् में तुम्हारा यश हो, इस अभिप्राय से जो दान देते हो, वह धर्म-दान नहीं। धर्म दान वा ईश्वर प्रीत्यर्थ दान तुम्हारा वही होगा, जो तुम्हारा दायां हाथ दान दे, और बाएं को खबर न हो। इसी लिए हमारे बड़ों में गुप्त दान की रीति थी, वे दान से अपना नाम नहीं चाहते थे। अतएव उन्होंने यह नियम बतला दिया था "दानं क्षरति कीर्तनात्" (मैं ने यह दान दिया है, ऐसी) घोषणा करने से दान झर जाता है। हां यश के जो काम हैं, उन के लिए धर्मदान से अलग भाग रक्खो, और उसी को यश के कार्यों में खर्च करो। यश

भी उत्तम वस्तु है, पर यश की इच्छा से ऊपर रहना उत्तमोत्तम है।

तीसरा भाग धन के लिए रक्खो, क्योंकि धन की वृद्धि में धन ही सहायक होता है।

चौथा भाग अपने लिए, जिस में अपना और अपने परिवार का पालन पोषण शिक्षा आदि का उत्तम प्रबन्ध होसके।

पांचवां अपने आश्रित जनों के लिए, जिन को सहारा देना तुम्हारा धर्म है।

इस उपदेश में पांच काम बतला दिए हैं, यह नहीं स्पष्ट किया, कि कितवां हिस्सा किस में लगाना चाहिए। आशय यह है, कि यह बात एक रीति पर नियत हो ही नहीं सकती। एक की इतनी आमदनी है, कि उस के अपने घर के सारे खर्च उसकी आमदनी के सिर्वे हिस्से से बड़ी अच्छी तरह चल जाते हैं। वह पांचों भागों में बराबर भी विभक्त कर सकता है। दूसरे की आमदनी थोड़ी है, कि उसे अपने घर का निर्वाह भी संकोच से करना पड़ता है। उस के लिए

पांचों बराबर २ नियत करना उस पर अन्याय करना है। इस लिए यही नियम नियत किया, कि इन पांचों में से पुरुष भूले किसी को भी नहीं। अपनी शक्ति के अनुसार पांचों में कुछ न कुछ डाले अवश्य। इस प्रकार एक १०) की आमदनी वाले का हृदय उतना ही उदार बना रहेगा, जितना कि एक लखपति का होगा। और उसका भी हृदय का लक्ष्य एक महा-धनी से नीचा नहीं रहेगा। तथापि कोई भाग नियत अवश्य ही होना चाहिए, इस लिए शास्त्रकारों ने यह नियम बांधा है, कि दसवां हिस्सा तो अवश्यमेव धर्मार्थ खर्च करे, अधिक करसके, तो और भी उत्तम है।

अपनी कमाई में से यथाशक्ति दान देना हर एक पुरुष का कर्तव्य है। पर इस बात का ध्यान रखना चाहिए, कि दान देने में अनेक नियम हैं, उन का पालन करना भी आवश्यक है। अन्यथा दान अल्प-फल वा निष्फल वा उलटा हानिकारक भी होजाता है।

पहला नियम यह है, कि परिवार के मुंह से छीन कर दान न करे। जैसा कि मनु अध्याय ११ में है।

शक्तः परजने दाता स्वजने दुःख जीविनि ।
मध्वापातो विषास्वादः स धर्मप्रतिरूपकः ॥९॥
भृत्यानामुपरोधेन यत् करोत्यौर्ध्वदेहिकम् ।
तद्भवत्य सुखोदर्कं जीवतश्च मृतस्य च ॥१०॥

जो समर्थ होकर भी अपने कुटुम्ब के भूखे मरते हुए दूसरे लोगों को दान देता है, उसका वह दान धर्माभास है, जो जाहरा शहद है, पर विष के स्वाद वाला है । अन्त में नरक में डालता है ॥९॥ कुटुम्बियों को तंग कर के पुरुष जो कुछ परलोक के लिए करता है, वह उस के लिए जीते जी भी और मर कर भी दुःख परिणाम वाला होता है ॥१०॥

दूसरा नियम यह है, कि दीर्घ दृष्टि से आगामी फलाफल का ध्यान कर के दान दो । रावी के किनारे पर एक बार देखा, कि एक नवयुवक ने जाल में तोते फंसाए हुए थे, और वह उनको अब जाल में से निकाल २ कर थैले में रख रहा था । यूंही पकड़ने में तोता हाथ को काटता है, इस लिए वह पहले मार २ कर तोते को अधमरा कर के फिर गर्दन से पकड़ कर थैले में डालता था । वह ऐसा क्यों

करता है ? इस प्रश्न पर उस ने उत्तर दिया, कि "यह मेरी जीविका है । पहले इन सारे तोतों को घर ले जाता हूं । फिर इन में से दो पिंजरे में डाल कर और दो हाथ में पकड़ कर बाजार ले जाता हूं। हाथ वालों का गला दबाने से वे चीख पुकार करते हैं, तो बाणिये तरस खाकर प्रति तोता दो दो आने देकर छुड़वा देते हैं । इसी तरह सारे छुड़वा देते हैं। अगले दिन किसी नए बाजार में चला जाता हूं । कुछ दिनों के पीछे किसी दूसरे शहर में चला जाता हूं । इस तरह मेरी जीविका अच्छी चलजाती है"। अब देखो अपनी समझ में तो उन तोतों के छुड़ाने वाले पुण्य का काम करते हैं, पर वस्तुतः वे करते पाप हैं। क्योंकि पैसे देकर उन के छुड़ाने के कारण ही वे तोतों को पकड़ते मारते पीटते और तंग करते हैं । दीर्घदृष्टि से यह तोतों पर दया नहीं, बल्कि निर्दयता है । इस तरह तोतों को पीड़ित कर के हिन्दुओं से जीविका पाने वाले कई नगरों में पाए जाते हैं ॥

इसी प्रकार पर्व के दिनों में जहां हिन्दुस्त्रियें

नदियों-पर जाकर मच्छलियों को आटा डालती हैं, वहां थोड़ी दूर नीचे मछलियां पकड़ने वाले कुंडियां लगा कर बैठ जाते हैं। और बहुतायत के साथ उस दिन उन को मछलियां मिल जाती हैं। इस प्रकार अपनी ओर से उन मछलियों पर दया करती हुई भी वे स्त्रियें वस्तुतः उन के मृत्यु का कारण बनती हैं। इस प्रकार अनेकों दान ऐसे होते हैं, जो अज्ञानता से उलटे हानिकारक होते हैं।

पुराने समय में "साधु" शब्द एक बड़ा आदरणीय था। क्योंकि साधु उसको कहते थे 'साध्नोति परकार्यमिति साधुः" जो औरों की भलाई में लगा रहता है, वही साधु है। किन्तु जैसा त्यागी अपने जीवन का एक २ पल दूसरों की भलाई में लगा देते हैं, वैसे गृहस्थ नहीं लगा सकते, इस से लोक में साधु नाम ऐसे त्यागियों का ही प्रसिद्ध हुआ, जो घरबार छोड़ कर केवल परोपकार में रत हों। उन परोपकारियों की सेवा करना गृहस्थों ने अपना धर्म समझा। पर जब तक गृहस्थ सच्चे परोपकारियों के ही सेवक रहे, तब तक

सच्चे परोपकारी ही साधु बनते रहे। और जब गृहस्थों ने केवल भेष को पूजना आरम्भ कर दिया। तो मुफ्तखोरों की एक भारी संख्या साधुओं का भेष धारने लगी। सो अब ऐसे साधु भी पाए जाते हैं, जो विद्या में निरक्षर भट्टाचार्य और आचरण में अत्यन्त गिरे हुए होते हैं। भंग चरस गांजा मदक पीना ही उनका जप पाठ होता है। और यही जप पाठ वह अपने पास बैठने वालों को सिखला जाते हैं। और कभी २ और भी कोई न कोई उपद्रव कर डालते हैं। ये साधु नहीं, असाधु हैं। पर इन असाधुओं को भी लोग साधु जान कर पूजते हैं। यह अत्यन्त भूल है। ऐसे असाधुओं को दान देना उलटा हानिकारक है, क्योंकि ये हट्टे कट्टे असाधु कोई धर्मोपदेश तो करते नहीं किसी न किसी गृहस्थ की प्रतिष्ठा पर बट्टा अवश्य लगा जाते हैं, और उन के लड़कों को भंग चरस पीना सिखा जाते हैं। और नकारे बना जाते हैं। ऐसे असाधुओं को दान देने से पुरुष पुण्यात्मा नहीं बल्कि उलटा पापी बनता है। इन के कारण सच्चे साधुओं

की भी प्रतिष्ठा घट रही है। इन को एक पाई नहीं देनी चाहिए, ताकि निरुपाय होकर काम करने लगें। इन को काम करने पर वाधित करना, इन को मुफ्तखोरी के पाप से बचाना, और इन के संगियों को बिगड़ने से बचाना और साधु भेष पर लगते कलंक को दूर करना है। अतएव इन को दान देना नहीं बल्कि न देना, और देते हुए को भी हटा लेना ही पुण्य का काम है।

कई साधु ऐसे भी हैं, कि वे किसी का बिगाड़ तो नहीं सकते, पर संवारते भी किसी का वा अपना कुछ नहीं। आलसी होकर सारा दिन पड़े रहते हैं। उन को भी दिया व्यर्थ जाता है। परमेश्वर ने हाथ पाओं हिलाने के लिए दिये हैं, जो आलसी होकर पड़ा रहता है, वह ईश्वर की आज्ञा का भंग करता है, और जो उस को आलसी पड़ा रहने में सहायता देता है, वह ईश्वर की अवज्ञा करने में सहायता देता है। इसलिये वे दोनों डूबते हैं। इसी आशय से भगवान् मनु ने आलसी ब्राह्मण को दान देने के विषय में यह कहा है—

अतपास्त्वनधीयानः प्रतिग्रहरुचिर्द्विजः।
अम्भस्यश्मप्लवेनेव सहतेनैव मज्जति ॥ (मनु ४। १९२)

तप और विद्या से हीन होकर दान में रुचि रखने वाला ब्राह्मण जल में पत्थर की नौका की भांति दाता समेत ही डूबता है।

हमारे पूर्वजों ने ब्राह्मणों को दानपात्र ठहराया था, पर ब्राह्मण आलसी होकर मुफ्त में नहीं, बल्कि विद्या और धर्म के प्रचार में दिन रात लगे रह कर दान लेते थे, इस प्रकार बहुत देकर थोड़ा लेते थे।

पञ्जाब में भाटड़ों की एक जाति है, जो भीख-मांगने के सिवाय और कोई काम नहीं करते, उन के छोटे बच्चे और वृद्ध सभी भीख मांगते हैं। और इस विद्या में ऐसे निपुण होते हैं, कि आज साधारण साधु वेष में मांगरहे हैं, तो कल जटाधारी साधु बन जाएंगे, परसों मौनी बनकर एक स्थान पर आसन लगा देंगे, चौथे ज्योतिषी बन कर कुछ लेजाएंगे। निदान मांगने में बड़े निपुण हैं, और बड़ी २ दूर देश देशान्तरों में मांगने चले जाते हैं। इस तरह पर बड़ा रुपया कमा

लेते हैं। पर सारा शराब आदि में खर्च कर देते हैं। ये भांति २ की क्रीड़ाएं रचकर अपनी पूजा खूब करवालेते हैं। पर इस से देश को और स्वयं उनको भी सिवाय हानि के कोई लाभ नहीं। ऐसे अपात्र तो लोगों के घरों में पहुंच कर दान लेलेते हैं, पर पात्र इस तरह जाकर मांगते नहीं। अतएव उन के हिस्से में दान का भाग आता ही नहीं, वा बहुत ही थोड़ा आता है। और जहां यह अव्यवस्था हो, कि अपात्रों को दान मिले, और पात्रों को न मिले, उस देश के लिए शास्त्र यह फल बतलाते हैं :—

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यानां च व्यतिक्रमः।
त्रीणि तत्र भविष्यन्तिदुर्भिक्षं मरणं भयम् ॥

जहां अपूज्य पूजे जाते हैं, और पूज्यों की पूजा नहीं होती वहां (इस व्यतिक्रम के) ये तीन फल होंगे, दुर्भिक्ष, मारी और भय।

इस लिए दान देने में बड़ा सावधान होना चाहिए। दान बहुत भी यदि बहुत थोड़ा फल लाया, तो किस काम का, हां थोड़ा भी यदि फल बहुत लाए, ता

वही बढ़ कर है। देखो ईश्वरचन्द्र विद्यासागर बड़े दानी थे, पर वह दान सदा पात्रों को ही देते थे। एकबार बर्द्वान में एक लड़के ने उन से एक पैसा मांगा। लड़के को देख कर उन को निश्चय होगया, यह मंगता नहीं, विपद में पड़ कर मांगने लगा है। सो उन्होंने उस से कहा "यदि मैं चार पैसे दूं, तो तू क्या करेगा" लड़के ने उत्तर दिया 'दो पैसा का आटा लेजाउंगा, दो पैसे अपनी माता को देदूंगा' ईश्वरचन्द्र ने फिर कहा 'यदि मैं तुझे चार आने दूं, तो तू क्या करेगा" लड़का यह जान कर, कि यह मुझ से हंसी कर रहे हैं, लज्जित होकर जाने लगा, तो ईश्वरचन्द्र ने उस का हाथ पकड़ लिया, और फिर वही बात पूछी, तब लड़के ने कहा 'खाने के लिए दो आने के चावल मोल लूंगा, औरदो आने के आम लेकर बेचूंगा, ऐसा करने से मुझे दो एक आने और मिलजाएंगे' यह सुन कर ईश्वरचन्द्र ने उस लड़के को एक रुपया दे दिया। लड़का चला गया। कई वर्ष पीछे ईश्वरचन्द्र फिर बर्द्वानगए, तो बाजार में एक आदमी उनके पास आया,

और हाथ जोड़ कर बोला 'दयासागर मेरी दुकान पर चलिये, और उस को पवित्र कीजिये' ईश्वरचन्द्र ने कहा "मैंने तुम्हें नहीं पहचाना" उस आदमी ने उत्तर दिया 'दयानिधे ! आप मुझे नहीं पहचानते, परन्तु मैं आप को पहचानता हूं, मुझे आप ने एक पैसा मांगने पर एक रुपया दिया था, मैं ने उस रुपये में से चौदह आने के आम लेकर बेचे, उस से मुझे कई आने बचे, फिर और लेकर बेचे। मैं इसी तरह आम लेलेकर बेचता रहा, और मुझे लाभ होता रहा, उसी से उन्नति करते २ अब मैं ने एक दूकान खोल ली है, जिस से मेरा और मेरी माता का सुखपूर्वक निर्वाह होता है" यह सुन ईश्वरचन्द्र बड़े प्रसन्न हुए और उस की दूकान में थोड़ी देर जाकर बैठे*। अब ध्यान देकर देखलो यह एक रुपये का दान उन हजारों रुपयों से बढ़ कर है, जो बड़े २ सेठ अन्नसत्र (छेतर) लगवा देते हैं, जहां से किसी विपद्ग्रस्त को तो एक पाई नहीं मिलती, न वह मांगने जाता है, किन्तु निकम्मे अपात्रों की प्रति दिन भीड़ लगजाती है। हमारी

* स्वावलम्बन से उद्धृत

जाति को हाथ से कुछ दान देना तो निःसंदेह आता है, गरीब से गरीब पुरुष भी दान के दिनों (पर्वों) में अवश्यमेव कुछ न कुछ दान करता ही है, और धनी पुरुष तो नित्यप्रति भी बहुत दान देते हैं। तो भी हमारी जाति में दीन अनाथ बिलकते रहते हैं। विधवाओं का जीवन दुःख में कटता है, और कई विपद्ग्रस्त भले कुटुम्ब भूखे मरते रहते हैं। पीछे जो कई बार अकाल पड़ते रहे हैं, उन में कई हृदय विदारक उदाहरण सुनने में आए। बीकानेर में एक ब्राह्मणी कन्या कई दिन भूखी रह कर भूख से अचेत पड़ी हुई के मुंह में एक भंगी ने पानी डाला, और अचेतता में ही कुछ खाने को भी दिया, फिर जब होश आने पर भंगी ने उसे कुछ खाने को दिया, तो उस ने पूछा, कि तुम कौन हो। भंगी ने बतलाया, कि मैं भंगी हूं। तो वह रोकर बोली, कि मैं ब्राह्मणी हूं, मुझे इसी तरह भूखे ही मरजाने दो। पर जब उस भंगी ने बतलाया कि मैंने ही तेरे मुंह में पानी डाला है और कुछ खिलाया भी है। तब उस ने एक लंबी आह भरी,

बहुत रोयी, कि मेरा जन्म खोगया। पर अन्ततः यह जान कर, कि जो होना था, होगया, उस भंगी की कन्या बन कर उसी के घर रहने लगी। उन्हीं दिनों में एक स्त्री ने अपना लड़का चार आने को एक क़साई के पास बेच दिया, यह जान कर, कि लड़का बच तो रहेगा, और मेरा भी पापी पेट एक बार तो फिर कुछ खाएगा। भूख से बच्चों को बिलकते देख माता पिता घर से चल देते थे, और भूखे रह रह कर सड़कों पर ही प्राण दे देते थे। छोटे बच्चे बिलकते रहजाते थे, जिन के लिए चारों ओर अन्धेर छाजाता था। उन असहायों को जिन लोगों ने थोड़ी भी सहायता दी, उन का थोड़ा भी दान बड़े २ अन्नसत्र वालों से कई गुणा बढ़ कर है। पात्र अपात्र का विचार न करने में लोकचाल ही कुछ ऐसी होगई है, कि हमारा पड़ोसी भी सहायता का पात्र हो, पर हम उसको कोई सहायता नहीं पहुंचाएंगे, क्योंकि वह मंगतों की तरह हमारे द्वार पर खड़ा होकर हम से सहायता नहीं मांगता। अकालके दिनों में एक गाओं

में एक क्षत्रिय स्त्रीपुरुष का यह वृत्त है। कि एक दिन भूखा रह कर दूसरे दिन स्त्री ने कुछ पीसना कर के आटा लिया। रोटी पकाकर अपने पति को सारी ही रोटियां धर दीं। वह भी एक दिन का भूखा था, सारी ही खागया। पीछे जब पत्नी को रोटी खाने के लिए कहा, तो उस ने आगापीछा किया। पति को सन्देह हुआ, परात उठाकर देखा, तो पीछे एक टुकड़ा भी नहीं बचा था। पति की आंखों से आंसुओं की धारा बह निकली। जिस पतिव्रता ने भूख की अवस्था में बड़े कष्ट के साथ पीसना किया, और पहले से भी अधिक भूख लगाली। और फिर भी पति की भूख का ध्यान कर के अपनी भूख भूलगई। पति भला उस का दुःख कैसे देखता। वह यह कह कर चला गया, कि मेरे आने तक इस विपत्ति को इसी प्रेम में काटना। कुछ दिनों में ही पति कमा लाया। पर उस अबला ने इतने में कितने उपवास काटे, इस का उस भरे नगर में किसी को ध्यान न आया। ऐसी बातें अकाल के समय ही नहीं, नित्य होती रहती

है। अभी थोड़े दिनों की बात है, कि इस लाहौर में ही एक स्त्री ने अपने पति की बीमारी में इतनी विपद् झेली, जिस को सुन कर रौंगटे खड़े होते हैं। उस ने अपने कपड़ों तक बेच दिये, और अन्ततः पीसना भी किया। अकेली ने दिन रात पति की भी सेवा की। उस ने यतः किसी के आगे हाथ फैला कर न मांगा, इस लिए किसी ने उस की सहायता न की। सो ध्यान रक्खो, कि दान तुम्हारी कमाई का वह हिस्सा है, जो परमेश्वर के नाम पर दिया जाता है। जब तुम अपने धन को बड़ा देख भाल कर लगाते हो, तो परमेश्वर के धन को भी बेपरवाही से न फैंक दो। अच्छी से अच्छी जगह पर लगाओगे, तो परमात्मा तुम पर बहुत प्रसन्न होंगे। असहायों को सहायता दो। दीन अनाथों के पालन पोषण में और उन के योग्य बनाने में सहायता दो। विधवाओं के सहारे बनो। अनाश्रितों के आश्रय बनो। दुःख में, विपत्ति में सब की सहायता करो। देश में विद्या और धर्म के प्रचार के लिए खर्च करो। जब तक तुम अपनी जाति के

अपने देश के अनाथ बच्चों, विधवाओं, और विपद्-ग्रस्तों के बचाने का पूरा प्रबन्ध न करलो, तब तक कुत्तों के लिए रोटियों का थाड लेकर दरया की ओर चलना बन्द करदो। कुत्तों का हक़ पीछे है, पहले अपने जातीय भाइयों का तो हक़ पूरा करलो। और जब तक विद्या और धर्म के प्रचार का पूरा प्रबन्ध न करलो, तब तक अन्नसत्र न खोलो, विद्यालय खोलो, लोगों को विद्वान् बनाओ और धर्मात्मा बनाओ। इस तरह दान तुम्हारा उत्तम फल लाएगा, और जीवन तुम्हारा सफल होगा।

घर के लोगों का परस्पर बर्ताव।

घर के लोग आपस में कैसे बर्तें? यह बात हर एक गृहस्थ को जानने योग्य है। घर के मुखिया माता पिता होते हैं, उन की सन्तति उन के अधीन होती है। इस लिए घर में सब से बढ़ कर ज़िम्मेदारी माता पिता की है। इस लिये माता पिता को चाहिए, कि अपनी सन्तान का बड़ी सावधानी से पालन पोषण और शिक्षण करें। परमात्मा चाहते हैं, कि उस की

सारी प्रजा सुखी रहे। और हर एक पुरुष लोक-परलोक दोनों का पूर्ण सुख भोगें। पर दोनों लोक का सुख वह भोग सकता है, जो शरीर से हृष्ट पुष्ट और स्वस्थ हो, दीर्घायु हो, सरल और उदारहृदय हो, विद्वान् धर्मात्मा सदाचारी परोपकारी और ईश्वरभक्त हो। जो नरनारी ऐसे हैं, वे ईश्वर के प्यारे हैं। और जितना तुम दूसरे लोगों को ऐसा बनाओगे, उतने ही ईश्वर के अधिक प्यारे बनोगे। पर यदि तुम सब को वा बहुतसों को ऐसा नहीं बनासकते, तो इस ज़िम्मेदारी को तो अवश्यमेव पूरा करो। वह यह, कि जितने पुत्र कन्या परमेश्वर ने आप को दिये हैं, वे परमेश्वर ने आप को सौंपदिये हैं उन की ज़िम्मेदारी आप के ऊपर डालदी है। यदि तुम उन के योग्य बनाने में चूक गए, तो ईश्वर के सामने सुरखरू नहीं होसकोगे। बस तुम्हारा काम यह है, कि उन को पूरे योग्य बना दो। देखो, सन्तान के भरणपोषण और शिक्षण के लिए सभी कमाते हैं, पर यदि तुम इस भरणपोषण और शिक्षण को ईश्वर की ओर से दी हुई ज़िम्मेदारी

जान कर कमाओगे, तो यह धन कमाने का काम भी तुम्हारा धर्म का कार्य होजाएगा, पर यदि उस में पाप का अंश न मिलने दो। इसी तरह सन्तान के लिए तुम्हारे और भी सारे कार्य धर्म के रंग में रंगजाएंगे, यदि तुम मोह से नहीं किन्तु ईश्वराज्ञा जान कर करोगे। सो सावधान रहो, कि तुम्हारी हर एक चेष्टा तुम्हारी सन्तान को योग्य बनाने के लिए हो।

सन्तान बहुत कुछ बचपन के संस्कारों से बनती है। बहुतेरे माता पिता लाड चाव में बच्चों को बिगाड़ते हैं। उन को गाली देना आप सिखलाते हैं, और सुन कर खूब हंसते हैं। माता उस को पिता की पगड़ी उतारना सिखलाती है, और पिता उस को माता की वेणी खींचना (गुत्त पुटना) सिखलाता है, और ऐसा करते देख कर हंसते हैं। पर जब वह इन्हीं संस्कारों को लेकर बड़ा होता है, और सचमुच ही जब पगड़ी उतारता और गालियां देता है, तब रोते हैं। सो पहले ही सावधान रहो, कोई भी ऐसी बात बच्चे को न सिखलाओ, जो बड़ों में अनुचित समझी जाती है; उस

ने भी बड़ा ही होना है। सिखलाना तो अलग, यदि उन के सामने भी गालियां दोगे, तो वे सीख जाएंगे। तुम क्रोध में आकर जो गालियां बच्चों को देते हो, बच्चे भी क्रोध में आकर वहीं गालियां देते हैं, इस लिए तुम पहले अपना स्वभाव ऐसा बनाओ, कि तुम्हारे मुंह से कभी कोई गाली न निकले, तो बच्चे भी गाली देना नहीं सीखेंगे। हां यह भी आवश्यक है, कि अपनी सन्तति को अयोग्य बच्चों की संगति भी न करने दो। हर एक छोटे बड़े से जी कहना सिखलाओ॥

बहुतेरे मूढ माता पिता झूठ और चोरी भी अपने बच्चों को आप सिखलाते हैं। सांझे घर में जेठानी अपने पुत्र को और देवरानी अपने पुत्र को खाने वाली वस्तु घर में से चोरी देकर पक्की कर देती हैं, कि यहीं बैठकर खाले, किसी को दिखाना न, और कोई पूछे तो कहना, मैं ने नहीं की, इसी तरह बाज़ार से भी चोरी पैसे खर्चवाती हैं। इस प्रकार अपनी समझ में वे हित करती हुई अपनी ही सन्तति का बहुत बड़ा अहित कर डालती हैं, जब कि उन को झूठ और

चोरी की बाण डालदेती हैं। फिर जब उस से वस्तु लुकाकर कहती हैं, कि कौआ ले गया, और उस के हठ करने पर उस को निकाल भी देती हैं, तो वह बच्चा उस झूठ को जान लेता है, और झूठ बोलना सीख जाता है। बच्चे जब किसी दूसरे का कोई काम बिगाड़ देते हैं, तो माता पिता उपालम्भ से बचने के लिए सिखलाकर उन से झूठ बुलवाते हैं। घर में कोई बुलाने आए, तो लड़के को कह देते हैं, कि कहो बाबू जी घर नहीं हैं, और जब कोई वस्तु न देनी हो, और बच्चे से पूछने पर वह बतलादे, कि हमारे घर में अमुक वस्तु है, तो उस को झिड़कते हैं, कि क्यों तुम ने ऐसे कहा, इस प्रकार माता पिता घर में ही बच्चों को झूठ बोलने में उस्ताद बना देते हैं। और इन अवगुणों को लेकर वे जगत में अविश्वसनीय और निन्दनीय बन जाते हैं। ये अवगुण पड़ते इस लिए हैं, कि तत्काल इन से कुछ लाभ प्रतीत होता है। पर दीर्घदृष्टि से अवगुण अवगुण ही निकलते हैं।

कहते हैं, कि एक नवयुवक डाके में पकड़ागया, उसे कड़ा

दण्ड मिला। जेल में उस की माता उस को मिलने आई, उस ने अपनी माता के हाथ को दांतों से काट खाया। इस पर लोगों ने उस को बहुत फिटकार की, तो वह बोला। मुझे इस को देखकर इस लिए क्रोध आगया, कि मेरी इस दुर्दशा का कारण मेरी माँ ही है। जब मैं पहली बार एक यात्री के पैसे उठालाया, और आकर इसे बतला दिया। यदि उस समय उन में से यह आधे आप लेकर आधे मुझे खर्चने के लिए न देती, बल्कि उलटा मुझे डांटती, तो आज मेरी यह दशा कभी न होती। सो हर एक गृहस्थ का यह कर्त्तव्य है, कि वह अपनी शिक्षा और अपने जीवन के उदाहरण से अपनी सन्तति को सीधेमार्ग पर चलाए।

बच्चों को भयभीत कभी न करो। प्रायः मूर्ख माताएं चुप कराने के लिए हौवे का डरावा देती हैं। इस प्रकार डराने से लड़के कायर बन जाते हैं। भूषण पहनाने से भी लड़के कायर बनते हैं, क्योंकि माता पिता उनको अकेले बाहर जाने में ठगों का डर बतलाते हैं। कायरता एक तो स्वयं दोष है, दूसरा इस के

साथ कई दोष और आजाते हैं। इस लिए ऐसी कोई बात नहीं करनी चाहिए; जिस से बच्चे भीरु बन जाएं, बल्कि ऐसे मार्ग पर चलाओ, जिस से शूरवीर बनें।

यह याद रक्खो, कि हम कितने बड़े हैं, और उन के अनुसार हमारा अनुभव भी बड़ा है; तो भी हम भूलें कर जाते हैं। पर बच्चे जिनका अभी अनुभव बहुत थोड़ा है, वे हम से निःसंदेह बहुत अधिक भूलें कर सकते हैं। इसलिए उनको भूलों पर प्रायः दण्ड न देकर ही सावधान करना चाहिये। इस से वे जल्दी भूलों को सुधारना सीखेंगे। पर कई लोग तो ऐसे चिड़चिड़े स्वभाव के होते हैं, कि जो भूल उन से इस आयु तक होती है, वही यदि छोटे बच्चे से हो, तो सहार नहीं सकते। बच्चे ने दूध का गिलास दहलीज पर रख दिया, पिता के लंघते समय पाओं की ठोकर लग कर गिर पड़ा, तो वह बच्चे को झिड़कता है, कि तू बड़ा मूढ है, रस्ते में ही रख देता है। और यदि आप रख दिया, और बच्चे की ठोकर से गिरपड़ा, तो फिर यह कह कर झिड़कता है, कि अन्धा होगया है, देख कर नहीं चला

जाता, सामने तो पड़ा था। ऐसी भूल नहीं करनी चाहिये। यदि धीरज के साथ उनकी भूलों को सुझा कर उन से बचने का उपदेश देते रहो। तो बच्चे हर एक बात में बड़ी जल्दी सावधान होजाएंगे। जब माता पिता बच्चों को बहुत अधिक झिड़कते और क्रोध दिखलाते हैं। उस से बच्चे हठी और ढीठ बन जाते हैं।

सर्वथा बच्चों को सुधारना और महापुरुष बनाने के योग्य बना देना माता पिता के अधीन है। बच्चों का भरणपोषण लालनपालन शिक्षा दीक्षा सब कुछ ऐसे नियमों से करना चाहिए, जिस से उनका जीवन बड़े उत्तम सांचे में ढल जाए।

सुखी घर वह है, जिस में बच्चे सुशील, सभ्य, सुशिक्षित और आज्ञाकारी हों। भाई बहिनों में परस्पर प्रेम हो। बड़े छोटों की शिक्षा में सहायक हों। छोटे बड़ों के आज्ञाकारी हों। पति पत्नी में अद्वितीय प्रेम हो। घर के कामों में सभी पुरुषार्थी हों। और एक दूसरे का सभी मान रक्खें। जहां बड़े छोटों का मान रखते हैं, वहां छोटे यशस्वी बनने की चेष्टा करते हैं।

आत्मसम्मान और आत्मविश्वास की मात्रा उन्हीं में अधिक और बलवती होती है, जो बचपन में अपमानित नहीं होते रहते, और चाहे कैसा ही हो, अपने भरोसे पर काम करते, और आप ही अपनी भूलों को सुधारते हैं।

परोपकार।

अयं निजः परो वेति गणना लघु चेतसाम।
उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

यह अपना है, यह पराया है, यह गिनती छोटे दिल वालों की होती है, उदारहृदय पुरुषों के लिए तो सारी भूमि ही कुटुम्ब है।

बहुत छोटा बच्चा अपने स्वार्थ को ही दृष्टिगोचर रखता है, उसे कोई वस्तु आप ही देकर भी फिर मांगो, तो वह देना नहीं चाहेगा। पर तुम्हारे हृदय में जो उस के लिए प्रेम है, वह उसको इतना स्वार्थी रहने नहीं देता। प्रेम का यह स्वभाव ही है, कि जिस से तुम प्रेम करो, वह भी तुम से प्रेम करेगा, और जब प्रेम हृदय में जागता है, तो दूसरे के सुख में सुख प्रतीत होने लगता है। बस इस भाव के उत्पन्न होते

हां स्वार्थ के स्थान परार्थ प्यारा लगने लगता है। अतएव वही बच्चा जो एक दिन तुम्हारी ही दी वस्तु तुम्हें देना नहीं चाहता था, आज वही स्वयं बड़े २ कष्ट उठाकर भी तुम्हारी सेवा कर के ही प्रसन्न होता है। इस प्रकार परार्थ साधन में स्वार्थ त्याग की शिक्षा का घर में प्रारम्भ होता है। यही शिक्षा मनुष्य को अपने परिवार के भरणपोषण के लिए तय्यार करती है, और यही इसे आलसी न रहने देकर उद्योगी बना देती है। इस से मनुष्य का हृदय बहुत कुछ उदार होजाता है। कहां वह अनुदारता, कि भाई से दी हुई वस्तु भी उसे न दे सकना, और कहां यह उदारता, कि स्वयं कमा कर भी, आप न बर्त कर उसी के हाथ देना।

पहले यह प्रेम, जो मनुष्य में निरा अपने लिए था, जब वह फैल कर सारे परिवार में समागया, तो सारे परिवार का सुख अपना सुख बनगया। अब यदि मनुष्य इस प्रेम को अपने परिवार में ही बन्द नहीं रखता, और आगे फैलाता है। अपने पड़ोसियों, नगर-वासियों, देशवासियों, और मनुष्यमात्र से प्रेम करने

लगता है। उनका हितचिन्तन करता, और हितसाधन की चेष्टा भी करता है, तो सारा जगत् ही उस के लिए कुटुम्ब होजाता है। ऐसे शुभचिन्तन और हित-साधन का नाम परोपकार है॥

यह परोपकार मनुष्य में ईश्वरीय भाव है, पर-मात्मा जो कुछ कर रहे हैं, वह परोपकार ही है, हम भी जितना अधिक परोपकार करसकेंगे, उतने ही अधिक ईश्वर के प्यारे होंगे। इस जगत् में ऐसे भी अधम मनुष्य पाए जाते हैं, जो निष्प्रयोजन ही दूसरों को हानि पहुंचाने के लिए तय्यार रहते हैं। पर ऐसे उत्तम पुरुष भी हैं, जो अपनी हानि उठाकर भी दूसरों का भला करते हैं। इन को दूसरों की भलाई कर के जो आनन्द मिलता है, उस के सामने वह हानि कुछ भी चीज़ नहीं रहती। तुम स्वयं इसका अनुभव कर के देखो। किसी डूबते को निकालो, विपद्ग्रस्त को विपद् से छुड़ाओ। किसी का संकट काटो। किसी शराबी का शराब छुड़ा दो, जुआरी का जुआ छुड़ा दो, आवारा फिरने वाले को जीविका पर लगा दो।

तो देखोगे, कि तुम्हारा हृदय कैसा गद्गद् होता है। अतएव यदि सदा आनन्दित रहना चाहते हो, तो कभी दूसरों की भलाई का अवसर अपने हाथ से न जाने दो। याद रक्खो :—

जातस्य नदी तीरे तस्यापि तृणस्य जन्म साफल्यम्।
यत् सलिलमज्जनाकुलजन हस्तालम्बनं भवति ॥

नदी के किनारे पर उत्पन्न हुए उस घास के तिनके का भी जन्म सफल है, जो पानी में डूबते पुरुष के हाथ का सहारा बनता है॥

सामाजिक उन्नति वा देश सेवा।

हम जिस देश में रहते हैं, उस की अवस्था का, और जिन लोगों में रहते हैं उन के चरित्र का, प्रभाव हमारे जीवन पर पड़ता रहता है। जो देश विद्या में, शिल्प कला में पिछड़ा हुआ है, उस में कदाचित् ही कोई ऐसा पुरुष हो, जो विद्या में वा शिल्प कला में अपना नाम सारे जगत् में प्रसिद्ध कर दिखलाए। किन्तु जो देश विद्या वा शिल्प कला में सब से आगे बढ़ा हुआ है, उसी में सब से अधिक ऐसे पुरुष होंगे।

जब हमारा देश आगे बढ़ा हुआ था, तो हम ही नए २ आविष्कार करते थे, अब जब योरूप आगे बढ़ा है, तो वहीं नए आविष्कर्ता जन्म लेते हैं, हम उन की नकल भी नहीं कर सकते। यह देश की अवस्था के प्रभाव का स्पष्ट उदाहरण है। ऐसे ही सामाजिक चरित्र का चरित्र पर प्रभाव पड़ता है। तुम पूरे सत्य-वादी हो, पर जिन से तुम्हारा वास्ता है, यदि वे सब झूठे हैं, तो तुम्हें झूठ बोलना सिखादेंगे। यदि धावा तुम से झूठे इक़रार कर २ के तंग करने वाला हो, तो जब तुम ने १५ दिन को कहीं बाहर जाना होगा, तो तुम उसे कहोगे, कि मैंने आज से दसवें दिन बाहर जाना है, यदि उस से पहले कपड़े धोकर देसको, तो ले जाओ। यह तुम ने झूठ इस लिए बोला, कि उस ने एक दो दिन तो ज़रूर ही अधिक लगा देने हैं, यदि पहले ही १५ दिन कहे, तो समय पर मिलेंगे ही नहीं। पर जब दसवें दिन भी नहीं मिलते, तो फिर तुम कहते हो, अच्छा मैं दो दिन और ठहर जाता हूं, परसों अवश्य देदो। तुम झूठ बोलने वाले न थे, पर

जिस से तुम्हारा वास्ता है वह झूठा है, इस से वह दोष तुम्हारे ऊपर भी आएगा, यदि वह झूठा न होता, तो तुम कभी झूठ न बोलते। सो जानलो, कि इस प्रकार समाज का चरित्र मनुष्य के चरित्र पर प्रभाव डालता है। जहां लोग सत्यप्रधान होते हैं, उन में रह कर झूठा भी सत्यवादी बन जाता है, और जहां अनृतवादी होते हैं, उन में रह कर सच्चा भी अनृतवादी बन जाता है, इस प्रकार समाज का चरित्र हर एक मनुष्य के चरित्र पर अपना प्रभाव डालता है। इस लिए हर एक पुरुष का यह परम धर्म है, कि वह अपने देश और अपने समाज की उन्नति में अपनी उन्नति समझे। जिस से देश वा समाज उन्नत होता हो, ऐसी जो सेवा उस से बन पड़, उस में अपना अहोभाग्य समझे। योरूप और अमेरिका में बड़े २ विद्वान् धर्मात्मा धनी मानी ऐसे होगए हैं और हैं, जिन्हों ने देश सेवा और जाति सेवा को अपना लक्ष्य बनाया। लोगों के सुधार और उद्धार में, विद्या तथा धर्म के प्रचार में, अपना सर्वस्व लगा दिया। और सर्व साधारण ने भी उन

का साथ दिया। इसी से हम इन देशों को उन्नति के शिखर पर चढ़ा हुआ देखते हैं। हमारे देश में भी कुछ गिनती के भद्र पुरुष ऐसे हैं, उन के काम से देश और समाज को लाभ भी बहुत हुआ है। पर इतने बड़े देश और इतने बड़े समाज के लिए यह काम बहुत ही थोड़ा है। इस उत्तम धर्म के पालने में हर एक को अपना पूरा उत्साह दिखलाना चाहिए।

"मैं अपने देश और समाज की क्या सेवा कर सकता हूं" इस प्रश्न का उत्तर सब के लिए एक नहीं हो सकता। हां वे काम क्या हैं, जिन के करने से हम सेवा कर सकते हैं, इसका जानना हर एक के लिए आवश्यक है, फिर जिस से जो सेवा अच्छी बन सके, वह करे।

काम ये हैं, देश वा समाज में सभ्यता, सदाचार और विद्या का प्रचार करना। और समाज में प्रचलित कुरीतियों को मिटाना और सुरीतियों को स्थापन करना॥

हमारे देश में मनुष्यों की बहुत बड़ी संख्या गाओं में वास करती है, उस की अपेक्षा नगरों और पुरों

में रहने वाले मनुष्यों की संख्या बहुत ही थोड़ी है। गाओं का जल वायु शहरों की अपेक्षा बहुत अच्छा होता है। उन के घर खुले होते हैं, घरों में पाखाने नहीं होते, और घर के आगे गन्दी बदररौं भी नहीं बहती। पर वे लोग सफाई रखना नहीं जानते। घर उन के मैले रहते हैं। जहां ढोर बांधते हैं, वहीं आप भी सोते हैं, और वह जगह गन्दी भी रहती है। गाओं के निकट ही पाखाने फिर लेते हैं, और निकट ही खाद के ढेर लगाते हैं, जो पड़े सड़ा करते हैं और गन्दी वायु छोड़ते रहते हैं। निकट ही ऐसे जौहड़ होते हैं, जिन में मींह का पानी आस पास का गन्द लेकर जापड़ता है। पहनने ओढ़ने और बिछाने के वस्त्र भी उन के प्रायः मलिन रहते हैं। इन सारी बातों से उन को बहुत हानि पहुंचती है, मलेरिया के दिनों में वहां ज्वर का कोप बहुत होजाता है। कई २ महीने बीमार पड़े रहते हैं। और बहुत सी मौतें भी होजाती हैं। इन दोषों को दूर करना उन के लिए कठिन नहीं। पर उन को इन बातों की ओर ध्यान ही नहीं। दूसरी

त्रुटि उन में यह है, कि दंगा फसाद जल्दी कर लेते हैं, और मुकद्दमेबाजी में अपना समय और धन नष्ट कर देते हैं। तीसरी त्रुटि उन में शिक्षा का अभाव है। चौथे त्रुटि उन में वैज्ञानिक रीति से खेती करने की अज्ञानता है। और भी छोटी २ कई त्रुटियां हैं, उन में से इन त्रुटियों को मिटा देना एक बड़ी पवित्र सेवा है। गवर्नमिन्ट भी इस के लिए यथाशक्य प्रयत्न करती है। पर इस में पूरी सफलता तभी होसकती है, जब हम स्वयं इस काम को पूरा करने की चेष्टा करें। यह इस प्रकार पूरा होसकता है, कि पढ़ लिख कर निरा नगरों में रहना पसन्द न करो। ग्रामवासियों क सुधार और उद्धार क लिए ग्राम्यजीवन को उत्तम जानो। और उस के लिए पहले वैज्ञनिक रीति से खेती और ग्रामों में फलीभूत होने वाले हुनर दस्तकारियों और व्यापार की शिक्षा प्राप्त करो। तब तुम गाओं में रह कर इन कामों से उत्तम जीविका पालोगे, उत्तम दूध दही मलाई मक्खन आसानी से घर में मिलेगा, तुम्हारा जीवन नागरों की अपेक्षा बड़ा अच्छा रहेगा, तुम्हारी

सन्तति भी अच्छी बढ़ेगी। निदान सुखी जीवन की दृष्टि से तुम्हारा ग्राम्यजीवन नागरजीवन से अच्छा रहेगा। और जो सब से बड़ा काम तुम वहां करसकोगे, वह यह है, कि ग्रामीण जनों को वैज्ञाकि रीति पर खेती करना सिखा दोगे जिस से वे पहले से चौगुणा और आठ गुणा अपने खेतों से लाभ उठाया करेंगे। जो छोटे २ हुनर और दस्तकारियां वहां प्रचलित हो-सकती हैं, उनको प्रचलित कर के लोगों के लिए नई जीविकाएं खोलदोगे। और जब तुम हर एक अवसर पर हर एक की सहायता और सेवा के लिए तय्यार रहोगे, तो तुम्हारी योग्यता और प्रेम के वशवर्ती होकर वे तुम्हारी सारी बातों को सुनेंगे और मानेंगे। और तुम उन में सभ्यता, शिक्षा और धर्मप्रचार के जो उपाय बर्तोगे, सब में तुम्हारा साथ देंगे। और ज्यों २ तुम अपने प्रयत्न से उनको उन्नतोन्नत करते जाओगे, त्यों २ तुम्हारा जीवन अधिक आनन्दमय बनता जाएगा। नगर में जो एक क्लर्क बन कर अपने जीवन के दिन पूरे कर रहा है, वही यदि इस उद्देश्य

को लेकर ग्राम में वास करेगा, तो उस जीवन से इस जीवन में आकाश पाताल का भेद पाएगा। और पढ़े लिखों के लिए जीविका का यह एक नया उपाय निकलने से नौकरी भी दिनों दिन सस्ती न होती जाएगी। इन से अतिरिक्त जो विज्ञानी नगरों में ही रहें, उनको भी चाहिए, कि अवकाश के दिनों में ग्रामों में जाकर लोगों से मिले जुलें, उन में सभ्यता, शिक्षा और सदाचार का प्रचार करें। हिन्दुओं में हिन्दु-सभा, आर्यसमाज, सनातनधर्मसभा, सिंहसभा, ब्राह्म-समाज, आदि सभाएं विद्यालय और महाविद्यालय खोल कर विद्या का प्रचार करती हैं, और उपदेशों और पुस्तकों द्वारा सदाचार की शिक्षा देती हैं। अनाथालय और विधवाआश्रम खोलकर अनाथों और विधवाओं की सहायता करती हैं। पुस्तकालय और वा-चनालय खोलकर लोगों के ज्ञान बढ़ाने में प्रयत्न करती हैं। कई नवयुवक रात्रिस्कूल और रविस्कूल खोलकर दुकानदारों और मजदूरों में विद्या का प्रचार करते हैं। और मद्य निवारणीसभाएं जो लोगों से मादक

वस्तुएं छुड़वाती और उन के प्रचार को रोकती हैं। ये उन २ सभाओं के काम सब की दृष्टि में प्रशंसनीय हैं, चाहे धार्मिक बातों में परस्पर मत भेद भी है। इसी तरह महोदय श्रीगोखले की स्थापित की सेवा-समितियां पुस्तकालयों और वाचनालयों के द्वारा देश की जो सेवा कर रही हैं, वह बड़ा उत्तम फल दिखला रही हैं, उस के सभासद् किसी नगर में पुस्तकालय खोलते हैं। वहां वे नगर के हर एक बाजार और हर एक गली में से कुछ योग्य पुरुषों को अपने पुस्तकालय के सभासद् बनाते हैं। उनका काम यह होता है, कि वे अपने २ बाजार और गली में हर एक पढ़े लिखे को कोई उत्तम पुस्तक पढ़ने के लिए दे आते हैं। वही फिर कुछ दिनों के पीछे उस से पहली पुस्तक ले आते हैं, और नई पुस्तक पढ़ने के लिए दे आते हैं। इस प्रकार पुस्तकालय की हर एक पुस्तक काम में आती रहती हैं, और हर एक को नई से नई पुस्तकें पढ़ने को मिलती रहती हैं, जिन से उनका ज्ञान और चरित्रबल दोनों बढ़ते हैं। ऐसे ही बीमारों और विशेष कर

असहाय बीमारों की सेवा का काम रामकृष्ण मिशन वाले बड़ी उत्तमता से कर रहे हैं। वे बड़े २ नगरों में अपने औषधालय स्थापन करते हैं, वहां के धनी मानी उनको रुपये से और सर्वसाधारण बीमारों की सेवा में सहायता देते हैं। ये लोग अपने सामने सेवा का उद्देश्य रखते हैं, इस लिए हर एक रोगी के साथ बड़े प्रेम से बर्तते हैं, रोगियों के घर जा २ कर देखते हैं, दवा देते हैं, धीरज बन्धाते हैं, प्रेम दिखलाते हैं। रोगी का आधा रोग तो वह इस प्रेम भरे बर्ताव से ही दूर कर देते हैं। रोगी और उन के सम्बन्धी उन पर मोहित हो जाते हैं, और इस प्रकार वे रोगियों की बहुत बड़ी सेवा कर पाते हैं। हरिद्वार के कुम्भ पर जो सेवा-समितियों और दूसरे स्वयं सेवकों ने यात्रियों की सेवा की है, वह बड़ी ही सराहनीय है। स्वयंसेवक लोगों को धक्कों से बचाते थे, किसी को गिरने नहीं देते थे, गिर जाए तो झट उठा लेते थे, रोगी होजाय तो झट पट औषधालयों में पहुंचाते थे, जहां योग्य वैद्यों के अधीन उनकी दवा और सेवा का पूरा

प्रबन्ध होता था। भूले हुए छोटे बच्चों को संभालते, और उन के माता पिता को ढूंढ कर बिछड़ों को मिला देते थे। इस प्रकार कई उपायों से वे अपनी सेवा के द्वारा लोगों के कष्ट मिटाते थे। इस प्रकार समाज सेवा के लिए जो संस्थाएं स्थापित हैं, उनको सहायता दो, वा जिन तक उनकी सहायता नहीं पहुंचती है, उन के लिए अलग संस्थाएं स्थापन कर के उन को सहायता पहुंचाओ, वा स्वतन्त्रतया जहां जैसी सेवा की आवश्यकता समझो, करो, जैसा कि वर्तमान योरुप युद्ध में कई भारतीय नवयुवकों ने किया है। फ्रांस और बेलजियम के युद्धक्षेत्र में जो सेना भारत से भेजी गई थी, उस के घायलों और बीमारों की इंग्लैण्ड और फ्रांस के जिन अस्पतालों में चिकित्सा और सेवा शुश्रूषा होती थी, वहां *कोई दो सौ भारतीय युवकों ने सैनिकों की तन्दुरस्ती, दवा पानी भोजन वस्त्र और रसोई आदि की निगरानी बड़े प्रेम से की। ये युवक विलायत के कालेजों में शिक्षा प्राप्त

* संयुक्त प्रान्त की गवर्नमिन्ट की रिपोर्ट से उद्धृत

कर रहे थे। युद्ध छिड़ने पर इन्हों ने अस्पताली काम करने वालों में अपने मन से अपने नाम लिखा दिये"। इसी प्रकार और भी बहुत से नवयुवकों ने इस युद्ध में स्वयं सेवक बन कर सेवा की है। सो जहां जैसी आवश्यकता समझो, सेवा करो। सर्वथा देश और समाज की सेवा में भाग अवश्य लो। और यह भी स्मरण रक्खो, कि निरे व्याख्यान देने वा प्रस्ताव पास कर देने से बहुत थोड़ा लाभ होता है, अधिक लाभ इस से होता है, कि अलग २ लोगों से मिल कर उन के विचार पलटो। इससे जहां वे दोष से बचेंगे, वहां वे तुम्हारे हितैषी भी बन जाएंगे। निदान हम में से हर एक का यह काम है, कि अपने जीते जी अपने प्रयत्न और सेवा से वह अपने देश और समाज को उन्नत कर के जाए।

स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्।
परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते॥

जन्मा वह है, जिस के जन्मने से वंश पूर्ण उन्नति को पालेता है। अन्यथा इस परिवर्तन शील संसार में कौन ऐसा है, जो जन्मा और मरा नहीं है।

आदर्श-जीवन। (सरस्वती से उद्धृत)

मत्त होकर मोह से आलस्य-नद में मत बहो,
कर्म की गुरुता समझ कर्तव्य के पथ को गहो।
मधुर मञ्जुल सौख्यकर संसार में उद्योग ही,
मुक्ति का है द्वार निर्मल कर्म का शुभयोग ही ॥१॥
अकर्मण्य मनुष्य चिन्ता-रहित हो सकता नहीं,
स्वार्थपूरित हृदय नर का मुदित हो सकता नहीं।
अल्पजीवन-काल है, करना अनेकों काम है,
काम करने के विना किस को यहां आराम है ॥२॥
नित्य जीवन-मार्ग में सुख-शान्ति बिथराया करो,
नम्र वाणी बोल कर सब प्राणियों का मन हरो।
मधुर भाषण से सदा मधु-बिन्दु टपकाया करो,
विश्व में सर्वत्र निज औदार्य्य दरसाया करो ॥३॥
प्रेम-पूरित मधुर मृदु भाषण सुधा के तुल्य है,
एक भी उस से न बढ़ कर स्वर्ण-रत्न अमूल्य है।
दया, ममता, प्रेम, ये गुण स्वर्ग के सोपान हैं,
स्वार्थ, हिंसा, क्रूरता, मद, कपट, नरक-निदान हैं ॥४॥
सूर्य की किरणें यथा तम दूर करतीं लोक का,

सौख्य सरसाती हुई सब दुःख हरती लोक का।
त्यों, दया, समवेदना से लोक-आलोकित करो,
व्यथित, पीड़ित प्राणियों का शोकरूपी तम हरो ॥५॥
प्राण जिन का जल रहा दुःखाग्नि-सम्भव-ताप से—
जर्जरित जो हो रहे यहां दारिद्र्य के सन्ताप से।
घाव घोर अभाव का दुःख दे रहा जिनको घना,
हरो ऐसे बन्धुओं की भाइयो तुम यातना ॥६॥
दुःख अपने भाइयों के यथाशक्ति सदा हरो,
इस धरा को सुजनता-आलोक से उज्ज्वल करो।
प्रेम से निष्कामसेवा करो पीड़ित सृष्टि की,
प्राप्त होगी अमृत-धारा तुम्हें भी प्रभु-दृष्टि की ॥७॥

लोचनप्रसाद पांण्डेय।

ईश्वरभक्ति।

ईश्वर हमारे जन्मदाता, पालनकर्ता और मुक्तिदाता हैं। हमारे हाथ पाओं नेत्र श्रोत्र सब उनकी दात है, हम जो कुछ देखते सुनते खाते पीते हैं, यह भी सब उन्हीं की दात है। वे माता के तुल्य सदा प्रेममयी दृष्टि से हमारी ओर देखते रहते हैं, इसी से हमारा

जीवन प्रफुल्लित होता है। हम न जानते हुए भी सदा उन की गोद में रहते हैं, न पहचानते हुए भी सदा उन के हाथ का दिया खाते हैं। वे माता पिता के तुल्य हमारा सदा हित चाहते हैं, और हमारे हित ही के लिए माता पिता के सदृश ही भय भी दिखलाते हैं। वे पाप से फेरने के लिए रुद्ररूप धारण कर के दण्ड दिखलाते हैं, पुण्य में प्रवृत्ति के लिए सौम्य मूर्तिधारण कर के पुरस्कार देते हैं। पापी को दण्ड देते अवश्य हैं, पर अपनी करुणा से उसको भी अलग नहीं करते। हम उनको भूल जाते हैं, तौ भी वे हमें नहीं भुलाते। हम उन से परे हटना-चाहते हैं, तौ भी वे हमें अपनी ओर खींचते हैं। हम उन से दूर होजाते हैं, पर वे हमारा साथ नहीं छोड़ते। हम को गिरता देख कर सहारा देते हैं, गिरा देख कर उठाते हैं, उठता हुआ देख कर उत्साह देते हैं। तुम स्वयं जागो, उठो, बढ़ो, और देखो सारी सृष्टि तुम्हारी सेवा के लिए खड़ी है। यह किस की आज्ञा में, उसी प्रियतम परमात्मा की आज्ञा में। तनिक आंख उघार कर तो देखो,

सृष्टि के अन्दर बैठ कर वे तुम्हारे लिए क्या कुछ रच रहे हैं। उन के प्रेम को पहचानो, और उन से प्रेम करना सीखो। भक्ति के फूल उन के चरणों में समर्पण करो। वे इस सारी कुदरत में बसे हुए हैं, पर वे इन चर्मचक्षुओं से नहीं दीखेंगे, उन का दर्शन पाना है, तो पहले दिव्यदृष्टि लाभ करो, जैसा कि श्रीकृष्णजी ने अर्जुन को ईश्वर का स्वरूप दिखलाते हुए कहा था—"दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे रूप मैश्वरम्" हृदय ही दिव्यदृष्टि है। हृदय को परमात्मा के प्रेम से भरदो, तब इस सारी कुदरत में वे तुम्हें दीख पड़ेंगे। और तुम अपने अनुभव से कह उठोगे :—

दर दीवार दर्पण भये, जित देखूं तित तोहे।
कांकर पाथर ठीकरी भये आरसी मोहे॥

ऐसा प्रेम और विश्वास जब तुम्हारा परमात्मा में होगा, तो फिर तुम्हें नया जीवन मिल जायगा। तुम्हारा चारित्र बहुत ऊंचा होजायगा, तुम्हारा जीवन परोपकारमय बन जायगा।

तुम्हारे हृदय में यह अद्भुत प्रेम उत्पन्न होसके, इस के लिए प्रति दिन परमात्मा की स्तुति करो, और

प्रार्थना करो। विश्वास रक्खो, जो कुछ तुम परमात्मा से चाहते हो सब कुछ मिलेगा, परमात्मा हमारे माता पिता हैं, हम पूरे दावे के साथ उन से मांग सकते और पा सकते हैं, जैसा कि वेद उपदेश देता है :—

पितुर्न पुत्रः सिचमारभेत इन्द्र स्वादिष्टया गिरा शचीवः
(ऋ० ३। ५३। २)

हे शक्तिमन् इन्द्र पिता के अञ्चल को पुत्र की भांति मधुरतम वाणी से तेरे अञ्चल को पकड़ता हूं।

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।
अधा ते सुम्न मीमहे (ऋ० ८। ९८। ११)

हे दयालो हे अनन्तशक्ति वाले! तुम हमारे पिता हो, हमारी माता हो, हम तुझ से ही कल्याण चाहते हैं।

ईश्वर को सदा सर्वत्र अपने अंग संग देखने से एक तो पुरुष पाप से सर्वथा बच जाता है। पाप कभी उस के मन में ही नहीं आता, जो यह देखता है।

द्वौ सन्निषद्य यन्मन्त्रयेते राजा तद्वेद वरुणस्तृतीयः।

दो पुरुष अलग बैठ कर जो गुप्त बात करते हैं, परमेश्वर उन में तीसरे होकर जान लेते हैं।

दूसरा ईश्वर को अंग संग देखने वाला पुरुष

सर्वथा निर्भय रहता है। दुःख में, विपद् में, संकट घबराता नहीं। इस अवस्था में पहुंचने के लिए ह चाहिए, कि नित्यप्रति परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना करें धर्म पर चलने के लिए उन से बल मांगें। स्मरण रक्खो, जब कभी कोई विपद् वा संकट उपस्थित हो, तो परमात्मा से प्रार्थना तुम्हारे अशान्त चित्त को शान्त कर देगी। प्रार्थना का यह फल सम्पद् विपद् दोनों में अनुभव होगा। और तुम्हारा आत्मबल बराबर बढ़ता रहेगा। अतएव इस में कभी प्रमाद न करो। शुद्ध हृदय के साथ परमात्मा से आत्मबल की प्रार्थना तुम्हारे हृदय को बहुत बड़ा विशाल बना देगी। और जब तुम इस भक्तिरस में ऊंचे चढ़ते हुए उस के साक्षात् दर्शन कर पाओगे, तो फिर मृत्यु से पार होकर अमर होजाओगे।

न पश्यो मृत्युं पश्यति न रोगं नोतदुःखताम् ॥

परमात्मा का देखने वाला मृत्यु को नहीं देखता, न रोग को, और न दुःख को॥ परमात्मा के सम्मुख होते ही मृत्यु रोग दुःख और पाप पीछे हट जाते हैं। अतएव सदा उस के सम्मुख रह कर काम करो।

समाप्तोऽयं ग्रन्थः